कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

२६।६।८४

कथा
कुसुमांजलि

कथा-कुसुमाञ्जलि

सम्पादक
श्री जैनेन्द्रकुमार
श्री गुलाबराय, एम० ए०
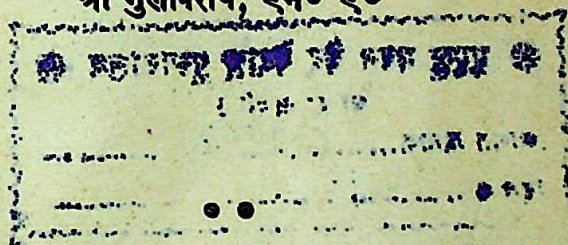
प्रकाशक
दी यूनीवर्सिटी बुक डिपो
कॉलेज रोड, आगरा।

१६५४] [मूल्य २)

मुद्रक—
जगदीशप्रसाद, एम० ए०, बी० कॉम०
दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा।

कृतज्ञता-ज्ञापन

जिन लेखकों और प्रकाशकों ने इस संग्रह में अपनी कहानियाँ उद्धृत करने के लिए अनुमति देने की उदारता-पूर्वक कृपा की है, अथवा जिन लेखकों की कृतियों का भूमिका में लाभ उठाया गया है, उनके प्रति प्रकाशक तथा दोनों सम्पादक हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

अनुक्रम

नवीनतम

प्रस्तावना

"माँ, कह एक कहानी।"
"बेटा, समझ लिया क्या तूने
मुझको अपनी नानी ?"
"कहती है मुझसे यह चेटी,
तू मेरी नानी की बेटी।
कह माँ, कह, लेटी ही लेटी,
राजा था या रानी ?
राजा था या रानी ?
माँ, कह एक कहानी।"

—'यशोधरा'

कहानी की लोक-प्रियता

कहानी सुनने की उत्सुकता में हम सभी थोड़े-बहुत अंश में और किसी-न-किसी अवस्था में यशोधरा के लाड़िले राहुल के समानधर्मी हैं। इस सहज इच्छा में वह बालक भी गिरि-गुहा निवासी प्रागैतिहासिक मानव से लगाकर अपने निकटतम पूर्वजों का प्रतिनिधि था। कहानी सुननें की प्रवृति मनुष्य की समाज-प्रियता की द्योतक है। वह दूसरों के वृत सुनने में अपने को एक विस्तृत रूप में मूर्तिमान देखने का आनन्दानुभव करता है। कहानी द्वारा उसका एक बृहत्तर संसार से सम्बन्ध हो जाता है। वह दूसरों के दुःख में दुखी और सुख में सुखी होकर अपनी सहानुभूति को विस्तृत और व्यापक बना लेता है। कहानी सुनना-सुनाना भी स्वयं एक सामाजिक मनोरंजन का उत्तम साधन है। पुराने लोग अपने समकालीन लोगों के चरित्र की टीका-टिप्पणी की अपेक्षा कहानी कहना अधिक पसन्द करते थे; इसीलिये

कहानी सुनने-सुनाने की प्रवृत्ति प्रायः प्रागैतिहासिक काल से चली आ रही है। कुछ कहानियाँ कही जाती थीं और कुछ लोक-गीतों के रूप में गाई जाती रहीं। कहानी का मौखिक साहित्य भी कालान्तर में लिपि-बद्ध हुआ; क्योंकि लिखी वस्तु में केवल स्थायित्व ही नहीं आ जाता, वरन् वह सर्व-साधारण में प्रचार की वस्तु बन जाती है।

प्राचीन काल में कहानी मनोरंजन का ही मुख्य साधन न थी, वरन् वह शिक्षा का भी प्रमुख माध्यम थी। जो काम अब नाटक, सिनेमा और व्याख्यानों-द्वारा होता है, पूर्वकाल में वह कहानी द्वारा संपादित किया जाता था। प्रारंभिक मनुष्य अथवा उसका प्रतिरूप बालक सिद्धान्तों को आत्मा के निराकार रूप की अपेक्षा कथा-कहानी के हाड़-माँस में प्रतिष्ठित मूर्त रूप में देखना अधिक पसन्द करता है। हितोपदेश के रचयिता विष्णु शर्मा ने अपने राजकुमार शिष्यों को जानवरों की कहानियों के आधार पर ही सन्धि-विग्रह आदि सभी राजनैतिक पद्धतियों का परिचय करा दिया था। क्या मनोरंजन और क्या शिक्षा दोनों के लिए ही कहानी चिरकाल से एक अपूर्व साधन रही है। उसमें आबालवृद्ध सभी रुचि रखते हैं।

कहानी-साहित्य की प्राचीनता

कहानी-साहित्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना कि लिखने का। यदि हम अपने मन से इस भावना को दूर कर दें कि कहानी में जो कुछ कहा जाता है, काल्पनिक या झूठ होता है (संस्कृत के 'कथा' शब्द में यह भावना नहीं है और अब आत्म-कहानी आदि शब्दों-द्वारा हिन्दी में भी कहानी शब्द का सत्य से सम्बन्ध जुड़ता जा रहा है), तो हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि हमारे धार्मिक ग्रन्थों में कथा-साहित्य का अमित भण्डार है। वेदों उपनिषदों रामायण और महाभारत के आख्यानों में पर्याप्त मात्रा में कहानी

की रोचकता और नाटकीय सजीवता है। सरमा-पाणिः यम-यमी संवाद बड़े रोचक हैं। उपनिषदों में शुनःशेष, नचिकेता सत्यकाम जाबाल की कथाएँ, अत्यन्त हृदय-ग्राही और शिक्षाप्रद हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में इन्द्रियों और प्राणों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता की कथा बड़ी रोचक और सारगर्भित है। दान की सात्विकता के सम्बन्ध में महाभारत में आई हुई आधे सोने के शरीरवाले न्योले की कथा अत्यन्त तथ्य-पूर्ण है।

ऐतिहासिक आख्यानों के अतिरिक्त दृष्टान्त-रूप से आये हुए बहुत से रोचक उपाख्यान भी वर्तमान हैं। मरण-शैया पर पड़े हुए भीष्म पितामह ने जो नीति के उपदेश दिये हैं, उनमें बहुत-से उपाख्यान भरे पड़े हैं, कुछ तो हितोपदेश की कहानियों की भाँति बिल्ली-चूहों से सम्बन्ध रखते हैं। बौद्धों की जातक-कथाएँ अत्यन्त मनोरंजक रूप में जीवन के मूल्यतम तथ्यों का उद्‌घाटन करके दया और करुणा के सिद्धान्तों का प्रचार करती हैं। भगवान् बुद्ध ने अनेक तथ्यों की व्याख्या इन्हीं कथाओं द्वारा की है और इनमें से कुछ तो (जैसे मगर और बन्दर की कहानी) बहुत लोकप्रिय हो गई हैं। ऐसी कहानियों को देखते हुए रिस डेविस का यह अनुमान ठीक ही प्रतीत होता है कि ये कथाएँ ईसप की कहानियों की मूल-आधार हैं। प्रभू ईसामसीह ने अपने उपदेशों में बड़े सुन्दर दृष्टान्तों का प्रयोग किया है। उनके लिए कहा जाता है कि वे दृष्टान्तों के बिना बात नहीं करते थे 'He speak not without a parable.' उनका कहा हुआ "फ़िजूल खर्च बेटे' (Prodigal Son) का दृष्टान्त बहुत लोक-प्रिय है।

पैशाची भाषा में लिखी हुई गुणाढ्य की वृहत्कथा (बड्डकहा), जो अब अपने मूल रूप में अप्राप्य है, तत्कालीन कथा-साहित्य की विश्वकोष समझी जाती थी। उसी के अवशिष्टांश का सहारा लेकर

बुद्धस्वामी ने बृहत्कथा श्लोकसंग्रह, क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामंजरी, सोम-देव ने कथा-सरित-सागर नाम के तीन ग्रन्थ रचे। बाण की कादम्बरी और दण्डी का दशकुमार-चरित भी उसी पुस्तक से उपकृत हैं। ये ग्रन्थ अलंकृत भाषा में रचे गये हैं और संस्कृत गद्यकाव्य के (आज-कल के अर्थ में गद्य-काव्य नहीं) उत्कृष्ट नमूने हैं। वैताल पञ्च-विंशति (वैताल पच्चीसी) सिंहासन द्वात्रिंशतिका (सिंहासन बत्तीसी) शुकसप्तति (सुआ सत्तरी) आदि लोकप्रिय कहानियाँ भी उसी की सन्तति-परम्परा में हैं।

भारत अपने कथा-साहित्य में किसी देश का ऋणी नहीं; वरन् ; अरब के सहस्र-रजनी-चरित आदि ग्रन्थों का मूल उत्स भारत के ही ग्रन्थ-रत्न हैं। भारत के पंचतंत्र और हितोपदेश का प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। फारसी की अनवार सहेली हितोपदेश का अनुवाद है। पंचतंत्र और हितोपदेश के अनुवादक रेवरेन्ड हेल वर्थम (Reverend Hale Wortham) का कथन है कि पंचतंत्र किसी-न-किसी रूप में सभी सभ्य यूरोप में प्रख्यात था। नवीं शताब्दी में उसका अनुवाद अरबी में हुआ था। इब्रानी (Hebrew) और यूनानी अनुवादों-द्वारा यूरोप की बहुत-सी भाषाओं में उसका रूपान्तर हुआ था और अँग्रेजी से पिल्पे की दन्त-कथाओं के नाम से ज्ञात था। हम बिना किसी अत्युक्ति के कह सकते हैं कि हम भारतवर्ष के केवल इस विचार के लिये ही ऋणी नहीं हैं कि नैतिक और आध्यात्मिक तथ्यों को हम मूर्तरूप दे सकते हैं, वरन् कुछ उन मूल साहित्यिक रचनाओं के लिए भी अनुगृहीत हैं, जिसके द्वारा पूर्व में सत्य का उद्घाटन किया गया था।* यूनान

* The Panchtantra, in one form or another, was known over the whole cevilized world An Arabic translation existed made in the Ninth Century A. D., one in Hebrew, one in Greek from which versions it was translated into

की ईसप की कहानियाँ बहुत प्रख्यात हैं । उसकी और पंचतंत्र की बहुत-सी कथाएँ मिलती हैं, अन्तर इतना है कि पंचतन्त्र और हितोपदेश में ये कथाएँ एक बड़ी कथा के अन्तर्गत किसी कथन या सिद्धान्त की पुष्टि में स्थान पाती है । वह सिद्धान्त किसी सूक्ति या श्लोक में पहले दे दिया जाता है । ईसप की कथाओं में तथ्य या शिक्षा अन्त में आती है । पंचतंत्र और ईसप की कहानियों का एक ही उद्गम स्थान मालूम होता है । हितोपदेश की शेर और खरगोश वाली कहानी, जो इस संग्रह में दी गई है, ईसप की दन्त-कथाओं में भी मिलती है । हितोपदेश पंचतन्त्र का उपजीवी है । बौद्ध धर्म के पंडित रिस डेविस का विचार है कि पंचतन्त्र और ईसप की कहानियाँ बौद्ध-जातकों की ऋणी हैं और यह धारणा बहुत अँश में ठीक हो सकती है ।

कहानियों द्वारा नैतिक सिद्धान्तों का उद्घाटन इतने अच्छे रूप में अन्यत्र कठिनता से ही मिलेगा । विष्णु शर्मा ने शिक्षा के नाम से भागने वाले राजकुमारों को कहानियों के माध्यम द्वारा ही शिक्षा दी थी । हितोपदेश के हंसमयूर उपाख्यान में दूत भेजना, लड़ाई छेड़ना, अपना पक्ष कमजोर हो जाने पर अपने मित्र-द्वारा शत्रु के राज्य पर आक्रमण करा देना आदि युद्ध की सभी बातों का दिग्दर्शन करा दिया गया है ।

प्राचीन कथा-साहित्य की इतने में ही इतिश्री नहीं हो जाती है । इन थोड़ी-सी पुस्तकों के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में

most of the languages of Europe : and was known in England under an English version entitled Pilpay's fables. We may say without exaggeration that we owe to India not only the idea whereby moral and spiritual truth is conveyed under concrete form but also some of those very identical forms under which this truth was originally conveyed to the eastern people.

बहुत-सा मूल्यवान साहित्य वर्तमान है और उसका बहुत-सा भाग अभी अप्रकाशित है।

वर्तमान कहानी का जन्म

आजकल की हिन्दी-कहानियाँ जिनको गल्प, आख्यायिका या लघु कथा भी कहते हैं, तो भारत की पुरानी कहानियों की ही संतति हैं किन्तु कुछ विदेशी संस्कार लेकर आई हैं। खद्दर के सूट की भाँति उनकी सामग्री प्रायः देशी रहती है; किन्तु काट-छाँट अधिकांश में विलायती ढंग का होता है।

नये प्रकार की कहानी का जन्म वर्तमान युग की आवश्यकताओं में हुआ है। मासिक-पत्रिकाएँ, दैनिकों जैसे अल्पजीवी और पुस्तकों जैसे अपेक्षाकृत स्थायी साहित्य के बीच की वस्तु होती है। वे मास प्रति-मास नई सामग्री उपस्थित कर पाठकों के मनोरंजन तथा ज्ञानवृद्धि का साधन बनती हैं और गृह-कक्ष में रेल के सफर में और कभी-कभी स्कूल-कॉलेजों के खाली घंटों में भी वर्तालाप-कुशल मित्र का काम देती हैं। (आजकल रेडियो ने इस सेवा का बहुत-सा भार अपने ऊपर ले लिया है) हिन्दी में इस प्रकार के मासिक-साहित्य का चलन बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ था। कुछ तो नये युग में बढ़ती हुई जीवन की प्रतिद्वन्द्विताओं से उत्पन्न होने वाले समयाभाव और उतावलेपन का कारण और कुछ इन मासिक-पत्रिकाओं की भस्मक रोग की-सी तृप्तिहीन क्षुधा के निवारणार्थ ऐसे स्वतःपूर्ण मनोरंजक साहित्य की आवश्यकता बढ़ी, जो फालतू समय को भार-स्वरूप होने से बचाए और साथ ही कौतूहल और जिज्ञासा को बहुत देर तक त्रिशंकुगति में न रक्खे। भारतवर्ष में आवश्यकता आविष्कार की जननी तो नहीं, प्रचार की परिचारिका या धात्री अवश्य है। यूरोप के दिये हुए नमूनों पर यहाँ कहानियों का निर्माण होने लगा। हिन्दी को यह प्रेरणा

शुरू-शुरू में बङ्गाली से मिली और फिर सीधी अँग्रेजी से। कुशल व्यापारी की भाँति हिन्दी लेखक पहले सब एजेन्ट बने, फिर सीधे एजेन्ट बने और इसके पश्चात् उन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रयोगशाला खोल ली। हिन्दी-कहानी में विदेशी नमूना और निर्माण-विधि अवश्य है; किन्तु उसमें भारतीय संस्कारों, मनोवृत्तियों और परम्पराओं का भी पुट है। अब वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है।

आधुनिक कहानी की विशेषताएँ

आधुनिक कहानियों और प्रचीन कहानियों में कई बातों का अन्तर है। प्राचीन कहानियाँ दो प्रकार की हैं—एक मौखिक और दूसरी साहित्यिक। मौखिक कहानियाँ प्रायः रात में कही जाती थीं; क्योंकि दिन में कहने से मामा के गैल भूल जाने की आशंका रहती थी (वास्तव में दिन काम का समय समझा जाता था) और वे सीधी-सच्ची आडम्बर-रहित भाषा में कही जाती थीं। उनमें पात्रों के व्यक्तित्व का पूर्ण आभाव-सा था। एक राजा था एक रानी, उसके नाम-ग्राम से कोई मतलब नहीं। यदि राजाओं के नाम भी रहते थे, तो भोज, विक्रम, उदयन आदि राजाओं के, जो एक प्रकार से कहानियों के लोक प्रसिद्ध और सार्वजनिक आलम्बन थे। कालिदास ने अपने मेघदूत में ऐसे ग्राम-वृद्धों का उल्लेख किया है, जो कि उदयन की कथाओं में निपुण थे 'उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्'। प्राचीन कहानियों में कहानी दर-कहानी का गोरखधन्धा रहता था। इनमें मनुष्य और जानवर समान रीति से भाग लेते थे।

साहित्यिक कहानियों में पात्र कुछ पते-ठिकाने के होते थे; जैसे—'कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नाम का तालाब था; वहाँ पद्मगर्भ नाम का राजहंस रहता था।' जानवरों तक के नाम होते थे—जैसे

चित्रग्रीव कबूतर, चित्रवर्ण मयूर। साहित्यिक कहानियों में कुछ अलंकृत और समास पूर्ण शैली को अपनाया और कुछ सरल भाषा में लिखी गईं उसमें भी मनुष्य और जानवर समान भाव से भाव लेते थे और प्रायः कहानी दर-कहानी की भूल-भुलैया रहती थीं।

आधुनिक कहानियाँ प्रायः मानवकेन्द्रित होती हैं और उनमें राजा, मन्त्री और साहूकार के वेटे-वेटियों की अपेक्षा साधारण श्रेणी के लोग, जिनका हमें निकटतम परिचय होता है, अधिक रहते हैं। यद्यपि पहले जमाने की कहानी भी 'लोकहिताय' लिखे जाने के कारण मानवकेन्द्रित ही थी, तथापि उसमें मानवेतर सृष्टि को पर्याप्त मात्रा में स्थान मिलता था।

पूर्वकालीन कहानी के श्रोता और वक्ता कहानी में अक्ल को दखल देकर छानवीन द्वारा अपना सुख-स्वप्न भङ्ग नहीं करना चाहते थे। इसलिये वे ऐसी बातों में बुद्धिमत्ता का परिचय देना मूर्खता समझते थे। आजकल का पाठक कैसे और क्यों के फेर में अधिक पड़ गया है; इसलिये वह दैवी चमत्कार, विधि-विधान और आकस्मिकता का कम सहारा लेता है। अब कहानियों में देव और परियाँ नहीं आतीं। आजकल स्वर्ग और मर्त्यलोक के बीच का रास्ता भी बन्द हो गया है, (शायद महर्षि विश्वामित्र-द्वारा त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाये जाने के प्रयत्नों की विफलता देखकर) और न मनुष्य जानवरों की भाषा समझते हैं। वैसे अब भी कभी-कभी कहानियों में देव-दर्शन हो जाते हैं (जैसे चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार की 'आँसू' नाम की कहानी में) किन्तु अब श्रोता और पाठक दोनों जानते हैं कि यह बात अलंकारिक रूप से कही जा रही है। आधुनिक काल में भाग्य की अपेक्षा पुरुषार्थ पर अधिक जोर दिया जाता है; क्योंकि इस युग में मनुष्य अपनी शक्तियों पर अधिक भरोसा करता है। कोई नगर में प्रवेश करते ही इसलिये राजा हो

जाता था कि पहले राजा का हुक्म था कि सवेरा होते ही जिस पर नजर पड़े वह गद्दी का अधिकारी बना दिया जाय, तो इसमें मनुष्य का क्या गौरव बढ़ता है ? हम पुरुषार्थ पर गर्व कर सकते हैं, वह अपनी चीज है।

पहली कहानी का रस चमत्कार में था, आज की कहानी का रस चरित्र-चित्रण, भावों के उतार-चढ़ाव और विचारों के विश्लेषण में है। हृदयेशजी या प्रसादजी को छोड़कर आधुनिक कहानी में कादम्बरी या दशकुमार-चरित की सी अलंकारप्रियता भी नहीं है, किन्तु सादा होते हुए भी वह अपना गौरव रखती है। उसकी सादगी दरिद्र की कलाहीन सादगी नहीं है। अब कहानी में कथोपकथन का नाटकीय ढंग भी अधिक आता जाता है।

बिलकुल आधुनिकतम कहानी में घटना-चक्र का महत्त्व घटता जा रहा है। घटनाएँ मात्र और विचारों को आश्रय देने के लिये अर्गला (अर्गनी) का सा काम देती हैं और कहीं-कहीं वे एक बिन्दु की खूँटी मात्र रह जाती हैं। वर्तमान कहानी में घटनाओं का वर्णन-क्रम भी काल-क्रम के अनुकूल नहीं होता। प्रायः ऐसा होता है कि शृङ्खला की एक कड़ी शुरू में पकड़कर शेष कड़ियाँ मिला दी जाती हैं। गुलेरीजी ने 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी में बीच की घटनाओं का वर्णन मरणासन्न लहनासिंह की स्मृति के रूप में किया है। घटना की स्वल्प ही मात्रा उसे गद्य-काव्य (आजकल के अर्थ में वैसे तो सभी कहानी गद्य-काव्य हैं) होने से बचाये रखती है।

मेथ्यू आर्नल्ड ने काव्य को जीवन की आलोचना कहा है। यदि किसी प्रकार का साहित्य इस कथन को अधिक-से-अधिक सार्थकता प्रदान करता है तो यह वृत्त-साहित्य या कथा साहित्य का जिसमें उपन्यास और कहानी दोनों शामिल हैं। कहानी उपन्यास की भाँति कही

रूप और परिभाषा

जाती है और भूत से सम्बन्ध रखती है। नाटक में भूत को वर्तमान में घटता हुआ दिखाने का लक्ष्य रहता है। उपन्यास और कहानी में भूत को घटे हुए के रूप में दिखाते हैं। भविष्य की पृष्ठभूमि में भी कहानी बैठाई जा सकती है; किन्तु उसे लेखक पहले अपनी कल्पना में घटा हुआ देख लेता है। उपन्यास जीवन का पूरा चित्र है तो कहानी एक पहल की झाँकी-मात्र है इसीलिये उसे अँगरेजी लेखकों ने जीवन का स्नेपशोट (Snapshot) या जीवन का टुकड़ा (slice from life) कहा है; किन्तु वह टुकड़ा ऐसा होता है कि छिपकली की पूँछ की भाँति बिल्कुल सफाई के साथ अलग हो जाता है। वह स्थालीपुलाक न्याय, अर्थात्—हाँडी या थाली के एक चावल की भाँति कुल का परिचायक चाहे हो, किन्तु स्वतःपूर्ण होता है। उसमें कहीं बाहर से लाकर सम्बन्ध तन्तु नहीं जोड़ने पड़ते हैं और न 'संदर्भ देकर' with reference to context उसकी व्याख्या करनी पड़ती है। उसमें मुक्तक काव्य का-सा स्वतन्त्र पर पूरा चित्र रहता है। कहानी छोटी होते हुए किसी बड़े तथ्य का उद्घाटन करती है और जितना ही वह व्यापक तथ्य होता है, उतनी ही वह कहानी उत्तम होती है। कहानी अपने छोटे मुँह से बड़ी बात कहती है। तथ्य में केवल विचार ही शामिल नहीं है, वरन् भाव भी सम्मिलित है।

एडगर एलिन पो की दी हुई परिभाषा इस प्रकार है:—

A short story is a narrative short enough to be read in a single sitting written to make an impression, on the reader, excluding all that does not forward that impression, complete and final in itself.

अर्थात्—छोटी कहानी एक ऐसा छोटा विवरण है जो एक

बैठक में समाप्त हो सके और जो एक ही संवेदना उत्पन्न करने के लिये लिखा गया हो। उसमें वे सब बातें जो उस संवेदना के अग्रसर होने में सहायक न हों बहिष्कृत रहती हैं। वह स्वतः पूर्ण होती है।

यदि हम ऐसा कहें कि कहानी किसी मानवकेन्द्रित घटना या घटनाओं के तारतम्य के सहारे एक छोटे आकार के भीतर किसी महान् तथ्य का उद्घाटन या भावों की अभिव्यक्ति करती है, तो हम उसकी परिभाषा के बहुत कुछ निकट आ जाते हैं। राय बहादुर डॉक्टर श्यामसुन्दरदासजी ने अपनी परिभाषा में नाटकीय ढंग पर अधिक बल दिया है; किन्तु निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को उन्होंने भी आवश्यक माना है, उनकी परिभाषा इस प्रकार है—

'आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर नाटकीय आख्यान है।'

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करके हम कहानी में निम्न-लिखित बातें पायँगे—

१—उसमें किसी भूतकालीन घटना या घटनाओं की परम्परा का वर्णन होता है। (भविष्य की भी कहानी हो सकती है; किन्तु वह पहले कल्पना में घटित होकर भूत हो जाती है।)

२—उस घटना का मानव से किसी-न-किसी प्रकार से सम्बन्ध होता है।

३—वह घटना या घटनायें ऐसी होती हैं, जो किसी एक तथ्य के उद्घाटन में सहायक होती हैं, या वे किसी विशिष्ट दिशा में जाने वाली विचार या भाव-लहरी को जन्म देती हैं। मुंशी प्रेमचन्दजी का कहना है कि सब से उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।

४—इस वृत्तान्त को अधिक सुगठित और सजीव बनाने के लिये उसमें नाटकीय ढंग का सहारा लिया जाता है।

५—यह कथानक अपनी एकतथ्यता के कारण यथासम्भव संक्षिप्त होता है। इसके परिमाण के सम्बन्ध में यह है कि कहानी इतनी ही लम्बी होनी चाहिये कि वह एक बैठक में अर्थात्—ज्यादा से-ज्यादा दो ढाई घण्टे में समाप्त हो सके।

कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप में उसकी अनुजा। वृत्त या कथा-साहित्य की वंशजा होने के कारण कहानी और उपन्यास दोनों में ही कई बातों की समानता है। दोनों ही कलात्मक रूप से मानव-जीवन पर प्रकाश डालती हैं। इतना होते हुए भी दोनों की अपनी विशेषताएँ हैं, जो कि एक को दूसरे से पृथक् करती हैं। दोनों में केवल आकार का ही भेद नहीं है। हम यह नहीं कह सकते कि कहानी छोटा उपन्यास है अथवा उपन्यास बड़ी कहानी है। यह कहना ऐसा ही असंगत होगा, जैसा चौपाये होने की समानता के आधार पर मैंढक को छोटा बैल और बैल को बड़ा मैंढक कहना। दोनों के शारीरिक संस्कार और सङ्गठन में अन्तर है। बैल चारों पैरों पर समान बल देकर चलता है, तो मैंढक उछल-उछल कर रास्ता तय करता है। इस प्रकार कहानीकार भी बहुत-सी जमीन छोड़ता हुआ छलाङ्ग मारकर चलता है। दोनों के गति-क्रम में भेद है।

कहानी और उपन्यास

कहानी को हमने जीवन की एक झलक या झाँकी कहा है। झाँकी प्रायः क्षणिक परन्तु प्रभाव-पूर्ण होती है। कहानीकार केवल एक ही दृश्य पर सारा आलोक केन्द्रस्थ कर उसके प्रभाव को तीव्र-वत् बना देता है। उपन्यासकार पूर्ण चिड़िया ही नहीं; वरन् और पास बैठी हुई दूसरी चिड़ियों को तथा जहाँ तक उसकी निगाह दौड़ सके पूरे दृश्य का सावधानी के साथ अवलोकन करता है; किन्तु कहानीकार धनुर्विद्या-विशारद वीर अर्जुन की भाँति अपने निशाने

को अचूक बनाने के लिये केवल आँख की ओर ज्यादा-से-ज्यादा सिर को जिसमें आँख अवस्थित है, लक्ष्य कर तीर छोड़ता है।

कहानीकार अपने पाठक को अन्तिम संवेदना तक शीघ्रातिशीघ्र ले जाता है और एक साथ पर्दा उठाकर झाँकी की मोहक एवं आकर्षक छटा से मनोमुग्ध कर देता है। बीच-बीच में रहस्योद्घाटन नहीं करता, एक दो संकेत चाहे करदे, किन्तु अन्तिम क्षण एक बात को पेट में पचाये रखता है। अन्तिम संवेदना से ही बीच के संकेत भी सार्थक हो जाते हैं। उपन्यास के पाठक को जहाँ ग्रन्थ-कार के विश्वासपात्र होने का गौरव प्राप्त है, वहाँ कहानी के पाठक को अधिक प्रभावपूर्ण दृश्य के देखने और केन्द्रीभूत आनन्द के प्राप्त करने का सन्तोष है। कहानी की एकतथ्यता ही उसका जीवन-रस है और वही उसे उपन्यास से पृथक् करता है।

इसी मौलिक भेद के कारण दोनों प्रकार की रचनाओं के शिल्प विधान (Technique) में भी अन्तर पड़ जाता है। वाता-वरण का विस्तार, जीवन की अनेक रूपता, प्रासङ्गिक कथाओं के तारतम्य के कारण कथा-प्रवाह का बहुशाखा होकर अन्त की ओर अग्रसर होना, पत्रों का बाहुल्य आदि बातें जो उपन्यास में श्लाघ्य या कम-से-कम क्षम्य समझी जाती हैं, कहानी में अग्राह्य हो जाती हैं। कहानी में चरित्र के विकास के लिये अधिक गुञ्जाइश नहीं रहती। उसमें गढ़े-गढ़ाये चरित्र की एक झलक दिखाई जाती है, जिससे पूरे चरित्र का भी कुछ आभास मिल जाता है। वास्तव में वह चित्रण नहीं होता, वरन् एक क्षणिक प्रकाश होता है। कहानी के किसी पात्र में यदि चरित्र-परिवर्तन भी होता है, तो प्रायः एक ही प्रभाव-पूर्ण घटना से हो जाता है। उसमें सुनार की सौ चौटों की जरूरत नहीं, वरन् लुहार की एक गहरी चोट ही काम कर जाती है। मुन्शी प्रेमचन्द्र की 'आत्माराम', 'शंखनाद' (जिसमें

बेफिक्र मौजी गुमाऩ पैसे के अभाववश अपने बच्चे को खिलौना ख़रीदने की असमर्थता और निराशा से प्रभावित हो अपना रवैया बदल देता है और बच्चे का रोना ही उसके लिए कर्त्तव्य का शङ्खनाद बन जाता है। कौशिकजी की 'ताई' और श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार लिखित 'डाकू' शीर्षक कहानियाँ हिन्दी-कहानी-साहित्य में चरित्र-परिवर्तन के अच्छे उदाहरण हैं, किन्तु ये सब हैं एक ही चोट के प्रभाव।

कहानी की शैली अपनी संक्षिप्तता के कारण अधिक व्यञ्जना प्रधान होती है। उसमें 'गागर में सागर' भरने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। व्यञ्जना, जो काव्य का प्राण है, उपन्यास की अपेक्षा कहानी में अधिक मात्रा में वर्तमान रहती है; इसलिए वह काव्य के अधिक निकट आ जाती है। इसके अतिरिक्त उपन्यास का काव्यत्व बिखरा-सा रहता है; किन्तु कहानी का यह गुण उसकी एकतथ्यता के कारण अन्तिम विन्दु में स्थित रहता है।

कहानी और गद्य-काव्य

कहानी गद्य-काव्य के निकट होते हुए भी गद्य-काव्य नहीं है। काव्य के व्यापक अर्थ में तो कहानी उसके अन्तर्गत ही है; किन्तु जिस अर्थ में आजकल गद्य-काव्य प्रयुक्त होता है (जैसे राय कृष्णदास, वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री तथा दिनेश नन्दिनी चोरड्या आदि के लिखे हुए गद्य-काव्य) उस अर्थ में कहानी गद्य-काव्य नहीं है। गद्य-काव्य में घटनाओं का अभाव-सा रहता है और यदि घटनाएँ रहती भी हैं, तो उनको महत्त्व न देकर उनसे जाग्रत हृदयोद्गारों को ही मुख्यता दी जाती है। कहानी में उद्गारों के साथ घटनाओं को भी समान महत्त्व का अधिकार रहता है।

रेखा-चित्र या स्केच कहानी के बहुत निकट होते हुए भी उससे भिन्न है। रेखा-चित्र में एक ही वस्तु या पात्र का चित्राङ्कन रहता है।

और वह इस प्रकार से स्थायी होता है। कहानी में गत्यात्मकता रहती है। स्केच में वर्णन (Description) का प्राधान्य रहता है। कहानी में वर्णन के साथ कुछ प्रबन्धात्मक कथन (Naration) भी रहता है। हिन्दी में भी प्रकाशचन्द्र गुप्त ने बहुत सुन्दर रेखा-चित्र लिखे हैं। उनमें जिन वस्तुओं या व्यक्तियों का (जैसे लैटर-बक्स, पेट्रोल टैंक, या लालाजी) चित्र खींचा जाता है, उसमें उस वस्तु के स्थायी सम्बन्ध को ही उपस्थित किया जाता है।

कहानी और रेखा-चित्र

दण्डी तथा मम्मट आदि अन्य आचार्यों ने गद्य के दो भेद किये हैं। आख्यायिका वह है जो स्वयं नायक द्वारा ही कही जाय और कथा वह है जो नायक के द्वारा अथवा अन्य किसी व्यक्ति द्वारा कही जाय। सत्य घटना के होने के कारण अपना गुण कहना भी दोष नहीं है। दण्डी ने पीछे से इस भेद को गौण और अनावश्यक बतलाया है। उसका कहना है कि स्वयं नायक वक्ता हुआ या और कोई, यह भेद का क्या कारण हो सकता है?

कथा और आख्यायिका

अपादः पदसंतानो गद्यमाख्यायिकाकथे।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल॥
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेतरेण वा।
स्वगुणविष्क्रियादोषो नात्रभूतार्थशंसिनः॥
अपित्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदकारणम्॥

काव्यादर्श १।२३-२५

मम्मट ने आख्यायिका में उच्छ्वासों का होना माना है। इसलिए आजकल की कहानी के निकट कथा ही अधिक आती है।

कथा-साहित्य के अन्तर्गत होने के कारण वस्तु, (Polt) चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, शैली, और उद्देश्य ये छै तत्त्व तो उपन्यास की भाँति ही होते हैं ; किन्तु रचना के रूप-विशेष के कारण उनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर होता है। शरीर के अवयवों की भाँति ये तत्त्व भी अन्योन्याश्रित हैं। अस्थि पंजर की भाँति कहानी में कथा-वस्तु, आवश्यक है ; किन्तु बिना पात्रों और चरित्र-चित्रण के कहानी का मानवी तत्त्व विलीन हो जाता है और यह शव की भाँति प्राणहीन दिखाई देने लगती है। पात्रों का कथोपकथन और क्रिया-कलाप उनके चरित्र पर ही प्रकाश नहीं डालता, वरन् कथानक को भी अग्रसर करता है। घटनाएँ शून्य में नहीं घटती हैं और बाहर का प्रभाव मानसिक संस्थान पर पड़ता है। पात्रों की मानसिक क्रियायें भी नितान्त रूप से स्वतः प्रेरित नहीं होतीं। बाह्य दृश्यों और परिस्थितियों का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है और वह देश-काल की सीमाओं में बँधा रहता है। कहानीकार के लिए हम तुलसीदासजी के शब्दों में यह नहीं कह सकते कि 'शून्य भीति पर तनु बिन लिखा चितेरे।'

कहानी के तत्त्व

उद्देश्य के बिना कहानी घटनाओं की सूचीमात्र रह जायगी और हम कहानीकार को अखबार के संवाददाता से अधिक महत्व न दे सकेंगे। शैली के बिना पाठकों के हृदय में समान भावों का किस प्रकार हो सकता है ? कला की प्रेषणीयता शैली में ही है और शैली द्वारा ही कलाकार अपने अस्तित्व का परिचय देता है। मुंशी प्रेमचन्दजी की बहुत-कुछ सफलता शैली पर ही निर्भर है।

कहानी की कथा वस्तु अत्यन्त संक्षिप्त होती है। उसमें शहर के रहने वाले अल्प-संख्यक परिवार के कक्ष की भाँति प्रसंगागत महमानों के लिए समाई नहीं। कहानीकार अपने पाठक को अंत तक

पहुँचाने में इधर-उधर घूमने या चिलम-तमाखू पीने का अवकाश नहीं देता। घटनाओं के सम्बन्ध में 'विना प्रयोजन प्रवेश वर्जित है। कहानीकार का मूल मंत्र कहा गया है 'No admittance except on business must be the short story writer's motto' इसी के साथ घटनाओं को परस्पर सम्बद्ध होना भी आवश्यक है। उनका तारतम्य ऐसा हो कि वे एक कौतूहल की शृङ्खला में बँधी हुई आगे बढ़ती चली जायँ और ऐसा भी न मालूम हो कि वे जबरदस्ती ढकेल दी गई हैं।

कहानी का कथानक क्रमशः उत्थान को प्राप्त होकर 'चरम' या तीव्रतम स्थिति (climax) को पहुँचता है, यहाँ पर कौतूहल अपनी चरम सीमा को पहुँच जाता है। इसके पश्चात् कहानी का परिणाम या अन्त आता है, जिसमें पूरे तथ्य का उद्घाटन हो जाता है। चरम या तीव्रतम स्थिति परिणाम को अधिक महत्त्वपूर्ण बना देती है। यह कहानी के लिये अनिवार्य तो नहीं; किन्तु इसके द्वारा कहानी को अधिक उत्कर्ष प्राप्त होता है। कहानी के आरम्भ में अन्त का थोड़ा-सा संकेत रहना वाञ्छनीय रहता है, जिससे अन्त अप्रत्याशित होते हुए भी नितान्त आकस्मिक न लगे। यद्यपि कहानी की गति उपन्यास की-सी वक्र नहीं होती, तथापि एक-दो घुमाव उसकी रोचकता को बढ़ा देते हैं। जीवन का प्रवाह भी संघर्षमय है। वह भी भुजङ्गमगति से चलता है। कहानी उससे भिन्न नहीं हो सकती।

यद्यपि आज का मानव पुरुषार्थ को महत्त्व देता है, फिर भी जीवन में ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब कि कहना पड़ता है कि 'मेरे मन कुछ और है कर्ता के कछु और' Man proposes God disposes.' कहानीकार को भी ऐसा अवसर उपस्थित करना पड़ता है। इसी को विधि का विधान कहते हैं। केवल करुणा

उत्पादन के लिए विधि के विधान का आश्रय लेना अवांछनीय है; किन्तु यदि पुरुषार्थ की सीमा बतलाने के लिए ऐसा किया जाय, तो कोई हानि नहीं। इस प्रकार कहानी का कथानक बहुत अंश में कलाकार के उद्देश्यों और जीवन-मीमांसा पर निर्भर रहता है।

आजकल कथानक को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता, जितना कि चरित्र-चित्रण और भावाभिव्यक्ति को। चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध पात्रों से है। कहानी में पात्रों की संख्या न्यूनातिन्यून होती है।

कहानी के पात्र चाहे कल्पना-लोक के हों और चाहे वास्तविक संसार के; किन्तु वे सजीव और व्यक्तित्व-पूर्ण होने चाहिए। जो पात्र मिट्टी के थूमे की भाँति अपना कोई व्यक्तित्व न रखते हों, वे पाठकों में रुचि नहीं उत्पन्न कर सकते हैं। पात्र प्रायः लेखक के मानस-संतान होते हैं, किन्तु वे लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं बन जाते। लेखक जो व्यक्तित्व प्रदान करता है, विना पर्याप्त कारणों के उसे बदलता नहीं है और पात्र एक वार कल्पना-लोक में जन्म लेकर अपने व्यक्तित्व के अनुकूल ही कार्य-कलाप करते हैं। वे कथानक की आवश्यकताओं की पूर्ति-मात्र नहीं करते।

पात्र चाहे अच्छे हों या बुरे, अपने व्यक्तित्व में पूर्ण होने चाहिए, जब तक कि शिथिल व्यक्तित्व का चित्रण ही लेखक का ध्येय न हो। चरित्र-चित्रण की यही तो सफलता है कि पात्र हमको वास्तविक जीवन के परिचित और चलते-फिरते सजीव व्यक्ति दिखाई पड़ें। उसमें कमजोरी और दृढ़ता भी स्वाभाविक मात्रा में हो। कौशिक-जी की 'ताई' शीर्षक कहानी की नायिका अपने भतीजे के प्रति निष्ठुरता में पूर्ण है; किन्तु उसमें भी कभी-कभी कोमलता की क्षीण रेखा दिखाई पड़ जाती है। मुन्शी प्रेमचन्दजी की कहानी के बड़े भाई साहब उपदेश देने की प्रवृत्ति में सोलह आना बड़े भाई

साहब हैं; किन्तु पतंग की डोर हाथ में आ जाने से छोटे-से-भी छोटे बन जाते हैं। 'व्रत-भङ्ग' कहानी के कपिञ्जल में गरीबी की शान और चरित्र की दृढ़ता अन्त तक बनी रहती है। होश में आने पर वह पहली बात यही कहता है—'मुझे वस्त्र किसने पहनाया, मेरा व्रत किसने भंग किया ?'' पीछे से वह अपने को परिस्थित के अनुकूल बनाता है।

चरित्र-चित्रण कई प्रकार से होता है। उसके दो मुख्य प्रकार हैं—एक तो प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक (Direct or analytical) जिसमें कि लेखक स्वयं पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालता है और दूसरा है परोक्ष या नाटकीय (Indirect or Dramatic) ढंग, जिसमें या तो चरित्र पात्रों के वार्तालाप या कार्य-कलाप से अनुमेय रहता है। इसमें भी कभी-कभी लेखक किसी पात्र द्वारा सीधे या संकेतात्मक रूप से टीका-टिप्पणी करा देता है। लेखक स्वयं या तो गुण-दोषों पर बिलकुल सीधे तौर से प्रकाश डालता हुआ कहता है कि वह कंजूस है अथवा उदार शूर है अथवा कायर, और अपने कथन को उदाहरणों से पुष्ट करता जाता है। वह चरित्र का विश्लेषण करके उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं पर प्रकाश डालता है या वह चरित्र पर किसी प्रकार का लेबिल चिपकाए बिना उससे सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं, संवादों और कार्य-कलाप को प्रकाश में लाता हुआ, चरित्र-चित्रण में भी प्रायः सांकेतिक ढङ्ग ही अधिक पसन्द किया जाता है। सांकेतिक रूप से प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण का मुंशी प्रेमचन्दजी की 'लांछन' शीर्षक कहानी से एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

'वह बे पढ़ी-लिखी गरीब बूढ़ी औरत थी; देखने में सरल, बड़ी हँसमुख; लेकिन जैसे किसी चतुर प्रूफ-रीडर की निगाह गलतियों पर ही जा पड़ती है, उसकी आँखें बुराइयों पर ही जा पड़ती थीं।

शहर में ऐसी कोई महिला न थी, जिनके विषय में दो-चार लुकी-छुपी बातें उसे मालूम न हों। उसकी चाल में बिल्लियों का-सा संयम था। दबे पैर धीरे-धीरे चलती; पर शिकार की आहट पाते ही, जान मारने को तैयार हो जाती थी। उसका काम था महिलाओं की सेवा-टहल करना; पर महिलाएँ उसकी सूरत से काँपती थीं।'

परोक्ष चित्रण में आजकल वार्तालाप द्वारा चरित्र-चित्रण को मुख्यता दी जाती है। इसमें लेखक अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। पात्रों का चरित्र उनके वार्तालाप द्वारा अनुमेय रहता है और कभी कभी पात्र स्वयं अपने चरित्र का विश्लेषण कर देता है या दूसरा पात्र उसके विषय में कुछ शब्द या वाक्य सीधे या सांकेतिक रूप से कह देता है। देखिए:—

'हाँ हाँ, मैं जानता हूँ, तुम मुझे दरिद्र युवक समझकर मेरे ऊपर कृपा रखते थे; किन्तु उसमें कितना तीक्ष्ण अपमान था, इसका मुझे अब अनुभव हुआ।

...... न अभी न फिर कभी। मैं दरिद्रता को भी दिखला दूँगा, कि मैं क्या हूँ। इस पाखंड-संसार में रहूँगा, परन्तु किसी के आगे सिर न झुकाऊँगा। हो सकेगा, तो संसार को बाध्य करूँगा झुकने के लिये।'

दूसरे पात्र के मुख से किसी के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ कहलाने का एक छोटा-सा उदाहरण 'व्रत-भङ्ग' कहानी से दिया जाता है। नन्दन के क्षमा माँगने पर राधा कहती है—'स्वामी यह अपराध मुझ से न हो सकेगा। उठिये, आज आपकी कर्मण्यता से, मेरा ललाट उज्ज्वल हो रहा है। इतना साहस कहाँ छिपा था नाथ!

मुंशी प्रेमचन्दजी की 'गिला' नाम की कहानी में एक स्त्री अपने पति का चरित्र-चित्रण करती है। उसमें केवल एक ही पात्र है और उसके चित्रण में स्वयं उसके चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। यह

वर्णन कहीं तो बिल्कुल सीधा है, और कहीं सांकेतिक। सीधे वर्णन का उदाहरण देखिये—'महाशय अपने दिल में समझते होंगे, मैं कितना विनीत, कितना परोपकारी हूँ। शायद उन्हें इन बातों का गर्व है। मैं इन्हें परोपकारी नहीं समझती, न विनीत ही समझती हूँ। यह जड़ता है, सीधी-साधी निरीहता; इसलिए मैं तो इन्हें कृपण कहूँगी, अरसिक कहूँगी, हृदय-शून्य कहूँगी, उदार नहीं कह सकती।

फ़िज़ूलख़र्ची का सांकेतिक उदाहरण नीचे दिया जाता है। यह भी उसी स्त्री-द्वारा किया हुआ पतिदेव का चित्रण है! देखिए:—

'सच कहती हूँ, कभी-कभी तो एक-एक पैसे की तंगी हो जाती है और इन भले आदमी को रुपये जैसे घर में काटते हैं। जब तक रुपये के वारे-न्यारे न कर लें, इन्हें चैन नहीं। इनकी करतूत कहाँ तक गाऊँ। मेरी तो नाक में दम आ गया है। एक-न-एक महमान रोज यमराज की भाँति सिर पर सवार रहते हैं। न जाने कहाँ के बेफिक्रे इनके मित्र हैं। कोई कहीं से आकर मरता है, कोई कहीं से। घर क्या है, अपाहिजों का अड्डा है।'

वार्तालाप के अतिरिक्त पात्रों का कार्य-कलाप भी उनके चरित्र-चित्रण का एक साधन होता है। 'व्रत-भंग' शीर्षक कहानी से दिये हुए नीचे के अवतरण से नन्दन और राधा के चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है, देखिए—'राधा और दासी अनुचर ने मिलकर सीढ़ी लगाई। नन्दन विवर्ण मुख एक-एक को पीठ पर लादकर ऊपर पहुँचाने लगा। जब सब ऊपर आ गये, तो राधा ने आकर कहा—और कुछ नहीं है। केवल द्विदलों का जूस इन लोगों के लिए है, ले आऊँ)'

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कहानी में गढ़े-गढ़ाये चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है, उसमें विकास की कम गुंजाइश रहती

है। यदि परिवर्तन होता है, तो प्रायः एक साथ ही होता है। जैसा कि कौशिकजी की 'ताई' शीर्षक कहानी में हुआ है।

कथोपकथन या वार्तालाप द्वारा ही हम पात्रों के हृदयङ्गत भावों को जान सकते हैं। यदि वार्तालाप पात्रों के चरित्र के अनुकूल न हो, तो हम पात्र के चरित्र का मूल्याङ्कन करने में भूल कर जायँगे। कहानीकार घर के मौतबिर नाई की भाँति विश्वास-पात्र होता है; किन्तु मार्मिक स्थलों पर पात्रों के वार्तालाप को ज्यों का-त्यों उपस्थित कर देने में हमको दूसरे आदमी-द्वारा बताई हुई बात की अपेक्षा परिस्थिति का ठीक अन्दाज लग जाता है। कहानी में कथोपकथन का तिहरा काम रहता है। उसके द्वारा पात्रों के चरित्र का परिचय ही नहीं मिलता, वरन् उसके सहारे कथानक भी अग्रसर होता है और एक जी उबाने वाले प्रवन्ध-कथन के भीतर आवश्यक सजीवता उत्पन्न हो जाती है। कथोपकथन को संगत, सजीव, चमत्कार-पूर्ण और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिये। साधारण जीवन में बहुत-सा निरर्थक वार्तालाप भी करते हैं; किन्तु कहानी में इसकी गुंजाइश नहीं। हाँ, वार्तालाप में यथार्थता और सजीवता लाने के लिए दो-चार इधर-उधर की भी बातें खप सकती हैं; किन्तु कुशल कलाकार उनको भी सप्रयोजन और चरित्र का परिचायक बना देता है।

वातावरण भौतिक और मानसिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है और भौतिक वातावरण भी प्रायः ऐसा होता है कि जो पात्रों की मानसिक स्थिति की व्याख्या में सहायक हो। वातावरण के चित्रण में प्रसादजी ने विशेषता प्राप्त की है। 'पुरस्कार' कहानी के प्रारंभिक दृश्य में प्रकृति और जनता की मानसिक स्थिति में बहुत साम्य है। देखिए:—

'आर्द्रा नक्षत्र; आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें

देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कौने से स्वर्ण पुरुष झाँकने लगा—देखने लगा महाराज की सवारी। शैल-माला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा, वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें लेने लगा।'

मन पर प्रभाव डालने वाले वातावरण का उदाहरण हमको श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार की 'डाकू' शीर्षक कहानी में उस स्थल पर मिलता है, जहाँ कि डाकू दरबार साहब में जाता है और वहाँ के धार्मिक वातावरण से प्रभावित हो, उसके मन में पश्चात्ताप आ जमता है। (देखिए 'डाकू' शीर्षक कहानी पृष्ठ १२८) जब यह वातावरण केवल भौतिक या भौगोलिक परिस्थिति को समझाने के लिये उपस्थित किया जाता है, तब हम इसको सेटिंग, बैक ग्राउन्ड या पृष्ठ-भूमि कहते हैं। प्रत्येक कहानी में कोई उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है; किन्तु वह ईसप की कहानियों की भाँति व्यक्त नहीं किया जाता है। वह अधिकांश में व्यंजित ही रहता है। कहानी के अध्ययन में उसका उद्देश्य समझना एक आवश्यक बात होती है। कहीं पर उद्देश्य स्पष्ट रूप से व्यंजित होता है; जैसे—सुदर्शन की 'अलबम' शीर्षक कहानी में। उसका उद्देश्य बहुत ऊँचा है ! वह है याचक का स्वाभिमान नष्ट किये बिना उसकी सहायता करना। कहीं-कहीं यह कुछ गूढ़ हो जाता है। यह उद्देश्य कभी-कभी अन्तिम वाक्य में भी सूक्ति-रूप से रख दिया जाता है और उसकी उक्ति का चमत्कार ही उसमें काव्यत्व ले आता है; जैसे—अज्ञेयजी की 'शत्रु' शीर्षक कहानी का अन्तिम वाक्य—'जीवन की सब से बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।'

जिन कहानियों में चरित्र-चित्रण की ही प्रधानता रहती है, या

रेखा-चित्र दिया जाता है, उनमें उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट तो नहीं रहता; किन्तु उनमें भी चित्रण का दृष्टिकोण रहता है। उसी को उद्देश्य समझना चाहिये; जैसे—प्रेमचन्दजी की 'बड़े भाई साहब' शीर्षक कहानी में अग्रज होने की बड़ाई दिखाकर अपनी कुन्दजहनी छिपाने-वाले लोगों की कमजोरी का उद्घाटन।

शैली का कहानी के किसी एक तत्त्व से सम्बन्ध नहीं, वरन् सब तत्त्वों से है और उसकी अच्छाई या बुराई का प्रभाव पूरी कहानी पर पड़ता है। कला की प्रेषणीयता; अर्थात्—दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर रहती है। किसी बात के कहने या लिखने के विशेष प्रकार को शैली कहते हैं। इसका सम्बन्ध केवल शब्दों से ही नहीं है, वरन् विचार और भावों से भी है।

शैली के कुछ गुण; जैसे-संगीत, तार्किक क्रम आदि तो विचार से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ भाषा से। कलाकार का उद्देश्य किसी बात को केवल बोधगम्य कराना ही नहीं है, वरन् प्रभाव डालना भी है। बात तो जो 'शुष्कं काष्टं तिष्ठत्यग्रे' में है, वहीं 'नीरस तरुवर विलसति प्रातः' में भी है; लेकिन प्रभाव वैसा नहीं है। अच्छी शैली के लिये लक्षणा-व्यञ्जना आदि भाषा की सभी शक्तियों से लाभ उठाना पड़ता है। वैसे तो प्रत्येक लेखक की अलग शैली होती है; किन्तु मोटे तौर से दो प्रकार की शैलियाँ हैं—एक चलती मुहावरे-दार भाषा की जिसके प्रतिनिधि और नायक हैं मुन्शी प्रेमचन्द; दूसरी अलंकार-प्रधान शैली जिसके उत्कृष्ठ उदाहरण हमको चण्डी-प्रसाद 'हृदयेश' तथा 'प्रसाद' जी की कहानियों में मिलते हैं। 'प्रसाद'जी साधारण जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कहानियों में बहुत सरल भी हो जाते हैं; किन्तु 'हृदयेश' जी अपनी सभी कहानियों में एक से हैं। मुन्शी प्रेमचन्द की मुहावरेदार भाषा का अच्छा

उदाहरण हमको उनकी 'बड़े भाई साहब' शीर्षक कहानी में मिलता है। उससे एक छोटा-सा उद्धरण नीचे दिया जाता है :—

'मेरे फेल होने पर मत जाओ, मेरे दर्जे में आओगे तो दाँतों पसीना आ जायगा, जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे, और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा।....मेरे दर्जे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटा-दाल का भाव मालूम होगा। इस दर्जे में अव्वल आ गये हो तो जमीन पर पाँव नहीं रखने; इसलिये मेरा कहना मानिये। लाख फेल हो गया हूँ; लेकिन संसार का मुझे तुम से कहीं ज्यादह अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बाँधिये नहीं, पछताइएगा।'

इस अवतरण में मोटे टाइप में छपे हुए मुहावरों के अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू के शब्दों का बड़ा सुखद सम्मिश्रण है। मुशी प्रेमचंदजी इस मुहावरेदानी के शौक में कहीं-कहीं अँग्रेजी के मुहावरें ले आये हैं, जैसे -'हमेशा सर पर एक नंगी तलवार-सी लटकती मालूम पड़ती।' मुहावरों में भाषा को लक्षणाशक्ति के प्रयोग से कुछ चमत्कार आ जाता है और कुछ अपनी बात को एक बँधी-बँधाई प्रचलित शब्दावली के भीतर ले आने का सामाजिक सुख मिलता है। इन मुहावरों में चित्र से रहते हैं, जो बात को शीघ्र ही हृदयङ्गम करा देते हैं।

'हृदयेश'जी की शैली प्रायः 'बाण' की लिखी हुई 'कादम्बरी' की शैली का अनुकरण करती है; किन्तु जितनी बड़े समासों की क्षमता संस्कृत में है, उतनी हिंदी में नहीं; इसलिये वह अपेक्षाकृत कहीं सरल है। किन्तु ढंग वही है। ऐसी शैली में भाव की अपेक्षा शब्दों का चमत्कार अधिक रहता है। 'प्रसाद'जी अपनी भाषा में संस्कृत के शब्दों के प्रयोग से एक विशेष शालीनता ले आते हैं। संस्कृत के

शब्द उनकी भाषा की गति को कुण्ठित नहीं कर देते हैं। उदाहरणः स्वरूप एक छोटा-सा अवतरण 'व्रत-भंग' कहानी से दिया जाता हैः—

'राधा के नवीन उपवन के सौध-मन्दिर में अगरु, कस्तूरी और केशर की चहल-पहल, पुष्पमालाओं का दोनों संध्याओं में नवीन आयोजन और दीपावली में, वीणा, वंशी और मृदंग की स्निग्ध गंभीर ध्वनि बिखरती रहती। नन्दन अपने सुकोमल आसन पर लेटा हुआ राधा का अनिन्द्य सौन्दर्य एक-टक चुप-चाप देखा करता। उस सुसज्जित प्रकोष्ठ में मणि-निर्मित दीपाधार की यन्त्रमयी नर्तकी अपने नूपुरों की झंकार से नन्दन और राधा के लिए एक क्रीड़ा और कुतूहल का सृजन करती रहती। नन्दन कभी राधा के खिसकते हुए उत्तरीय को सँभाल देता। राधा हँसकर कहती—'

प्राची। वातावरण को अवतरित करने के लिए संस्कृत-प्रधान शैली ही उपयुक्त होती है। शैली का चुनाव विषय पर भी निर्भर रहता है। घटना-प्रधान सामाजिक कहानियों में प्रेमचन्द जी की ही शैली अच्छी रहती है। भाव प्रधान कहानियों में दोनों प्रकार की शैलियाँ प्रयुक्त होती हैं; किन्तु मार्मिक स्थलों में साधारण शब्दों से भी भाव का अच्छा उद्रेक हो सकता है।

उपयुक्त शब्द-चयन, पद-मैत्री, सुसंगठित वाक्य-विन्यास अकुण्ठित प्रवाह; फबती हुई अलंकार-योजना, भाषा की चित्रोपमता, लक्षणा-व्यंजना शक्तियों का सफल प्रयोग, हास्य-व्यंग्य का पुट, शैली के इन सब प्रधान गुणों के अतिरिक्त कहानी में शैली सम्बन्धी दो विशेष शक्तियों की आवश्यकता होती है। एक है, वर्णन शक्ति (Power of description) दूसरी है, प्रवन्ध-कथन-शक्ति Power of narration) जिसके लिए उपयुक्त शब्द के अभाव में अब विवरण शक्ति होने लगा है। यदि इसके लिए प्रकथन-शक्ति शब्द गढ़ लिया जाय, तो विशेष सुविधा रहेगी।

वर्णन, जड़ और चेतन दोनों का होता है और उससे प्रकृति-चित्रण भी आ जाता है। विवरण में अधिकतर घटना-वर्णन रहता है। वर्णन में स्थायी गुणों का चित्रण रहता है और विवरण में गतिशील घटनाओं या दशाओं का चल-चित्र रहता है। वर्णन-द्वारा कहानीकार वह काम करता है, जो नाटक में पर्दों और अभिनेताओं-द्वारा होता है। श्री जयशंकर प्रसादजी की 'गुण्डा' शीर्षक कहानी के नायक के वर्णन में हमारे सामने उसका चित्र-सा नाचने लगता है। देखिये:—

'वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रातों की छाया में, कड़कती हुई जेठ की धूप में, नंगे शरीर घूमने में वह सुख पाता था। उसकी चढ़ी मूँछें बिच्छू के डङ्क की तरह देखने वालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रंग, साँप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा, दूरसे ही ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमें सीप की मूठ का बिछुआ खुँसा रहता था। उसके घुँघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर उसी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कंधे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गड़ासा। यह थी उसकी धज! पंजों के बल जब वह चलता, तो उसकी नसें चराचर बोलती थीं। वह गुण्डा था।'

विवरण का सब से बड़ा गुण है—कौतूहल को जाग्रत रखना और गति में शैथिल्य न आने देना। गति में शैथिल्य आना, बनावटीपन की शङ्का दिला देता है। कहानीकार में यह शक्ति तभी आती है जब कि उसमें गहरी अनुभूति के साथ सजीव कल्पना हो और उसके चित्र को बाहर प्रतिफलित करने की शक्ति हो। इन

शक्तियों का कहानीकार में जितना योग होगा, उतनी ही उसकी सफलता निश्चित होगी।

कहानी का आदि और अन्त

कहानी का आदि उसका प्रवेश-द्वार है। यदि यह प्रवेश-द्वार ऐसा नहीं कि हमारी जिज्ञासा-वृत्ति को जाग्रत कर सके अथवा और किसी प्रकार का आकर्षण उत्पन्न कर सके, तो उसके पढ़ने के लिए पाठक की स्वाभाविक रुचि न होगी। बदर्जा मजबूरी उसे चाहे जो कुछ करना पड़े। कहानी के आदि के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह वास्तविक आदि हो किंतु वह ऐसा मार्मिक स्थल हो, जहाँ से आगे-पीछे के तन्तु जोड़े जा सकें। यह आरम्भ किसी महत्त्वपूर्ण वार्तालाप से और चाहे किसी विशेष स्थिति, वातावरण या घटना और कभी चरित्र के वर्णन से भी हो सकता है; किन्तु इसमें कुछ बात ऐसी हो कि जो हममें आगे जानने या रहस्योद्घाटन की इच्छा या दिलचस्पी पैदा कर सके। प्रारम्भिक वर्णनों और वार्तालाप में प्रायः कहानी की गति-विधि और दिशा का संकेत भी रहता है; लेकिन वह होता बहुत सूक्ष्म है। वार्तालाप कहानी का मुख्य तत्त्व है उसका सम्बन्ध चरित्र से भी रहता है और घटनाओं से भी। कुशल कहानीकार वार्तालाप का ऐसा अंश देगा कि जिसके द्वारा पाठक की स्वाभाविक जिज्ञासा-वृत्ति पर सान चढ़े और वह आगे की बात जानने को उत्सुक हो उठे। 'प्रसाद' जी की 'व्रत-भङ्ग' शीर्षक कहानी नन्दन और कपिञ्जल के वार्तालाप से आरम्भ होती है। वार्तालाप से दोनों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। यद्यपि इस वार्तालाप का अन्त हो जाता है, तथापि यह जानने की अभिलाषा रहती है कि इस सम्बन्ध विच्छेद का क्या परिणाम होगा, और इन दोनों बाल्यकाल के मित्रों का मिलन होगा या नहीं। सुदर्शनजी की 'अलबम' शीर्षक कहानी का आरम्भ देखिये, उसमें पं० शादीराम के ऋण से

मुक्ति पाने के विफल प्रयत्नों-द्वारा जो विकट परिस्थित खड़ी हो जाती है, उससे किस प्रकार छुटकारा मिलेगा, यह जानने के लिए पाठक उत्सुक हो उठता है। वातावरण की विवेचना में हमने जो 'प्रसाद' जी की 'पुरस्कार' शीर्षक कहानी से प्रारम्भिक अवतरण दिये हैं, वे बड़े सुन्दर प्रवेशक हैं। 'प्रसाद' जी ने एक आकर्षक वातावरण देकर (प्रस्तावना पृष्ठ २०) धीरे-धीरे कहानी के विषय से परिचित करा दिया है। पाठक को ज्ञात हो जाता है कि यह उत्सव वर्षा के सम्बन्ध में हैं और सम्राट् उसमें भाग ले रहे हैं।

कहानी का आरम्भ जैसा आकर्षक होना चाहिए, वैसा ही उसका अन्त चमत्कार-पूर्ण और स्थायी प्रभाव डालने वाला होना वाञ्छनीय है। कहानी के अन्त की झंकृति जितनी देर तक हमारे मानस-गगन में गूँजे, उतना ही हम कहानी को सफल समझेंगे। अज्ञेयजी की 'शत्रु' शीर्षक कहानी का अन्त बहुत ही प्रभाव-पूर्ण है। सुदर्शनजी की 'कवि की स्त्री' शीर्षक कहानी का अन्त बड़ा काव्य-मय तथा हृदय पर गहरी चोट देनेवाला है, देखिए:—

'उस रात मुझे ऐसी नींद आई। जैसे इसके पहले कभी न आई थी। मैंने पति को ठुकरा दिया था ; परन्तु उनके प्रेम को नहीं ठुकरा सकी। मनुष्य मर जाता है और उसका प्रेम जीता रहता है।'

कहानी लिखने की चार प्रणालियाँ हैं (१) ऐतिहासिक प्रणाली, जिसमें लेखक एक तटस्थ द्रष्टा की भाँति देखी हुई या सुनी हुई घटनाओं का वर्णन कर देता है। इसमें वह एक ऐतिहासिक की भाँति पात्रों के क्रिया-कलाप और भावों का वर्णन करता रहता है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ इसी ढंग की हैं। उदाहरण स्वरूप कौशिकजी की 'ताई' शीर्षक कहानी। (२) आत्म कथात्मक प्रणाली, इसमें एक पात्र स्वयं अपनी आत्मकथा के एक अंश के रूप में

कहानी लिखने के प्रकार

कहानी कहता है। जैसे मुंशी प्रेमचन्दजी की 'बड़े भाई साहब' कहानी। (३) पत्रात्मक प्रणाली, इसमें सारी कहानी दो पात्रों के पत्रों में ही कह दी जाती है। कभी-कभी एक ही पात्र के पत्रों में ही कथा पूरी हो जाती है। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'एक सप्ताह' शीर्षक कहानी पद्यात्मक कहानी का अच्छा उदाहरण है। (४) कथोपकथन प्रणाली, इसमें कथोपकथन का प्राधान्य रहता है। लेखक कथोपथकन में पात्रों का नाम कुछ वर्णन या परिचय के साथ बताता चलता है। कहीं-कहीं यह भी नहीं होता। कौशिकजी की 'सनक' शीर्षक कहानी कथोपकथन प्रणाली का उदाहरण है।

अच्छी कहानी की कसौटी

कहानी की उपरिलिखत व्याख्या से अच्छी कहानी के उपकरणों का आभास हो गया होगा। वास्तव में कहानी के सभी तत्त्वों का संतुलात्मक संयोजन ही कहानी को अच्छा बनाता है; लेकिन कहानी में सप्राणता लाने के लिए लेखक में कुछ स्वाभाविक देन चाहिए। उसी के आधार पर वह अपनी कहानी को सजीव बना सकेगा। जीवन का सूक्ष्म और गहरा निरीक्षण, आत्मवत् सर्वभूतों को देखने वाली उदार-हृदया व्यापक सहानुभूति और संवेदनशील हृदय, अपनी अनुभूति को मूर्तिमान करनेवाली विधायक कल्पना, चिन्तन-शील मस्तिष्क और अनुभूति को प्रकाश में लाने वाली अभिव्यंजना-शक्ति, ये सब साधन जिस लेखक के पास जितनी मात्रा में अधिक होंगे, उतनी ही उसकी कहानी अच्छी बनेगी। फिर भी कहानी के तत्त्व को जानने वाले पंडितों ने अच्छी कहानी की पहचान के लिए कुछ सूत्र दिये हैं। यहाँ पर श्री सत्यजीवन वर्मा की 'लेखनी उठाने के पूर्व' शीर्षक पुस्तक से हेरोल्ड हर्ड की दी हुई प्रश्नसूची उद्धृत की जाती है :—

१—क्या कहानी का शीर्षक आकर्षक है? (केवल आकर्षक

की ही आवश्यकता नहीं, वरन् उसमें कहानी के विषय का कुछ आभास भी आ जाना चाहिए)।

२—क्या आरम्भ से कुतूहल जाग्रत है ?

३—क्या परिणाम के हेतु पाठक निरन्तर प्रतीक्षित रहते हैं ?

४—क्या कहानी में यथेष्ट प्रयत्न (Action) है ?

५—क्या प्रभाव मार्मिक और गम्भीर है ?

६—क्या पात्रों का चरित्र स्पष्ट और स्वाभाविक है ?

७—क्या कहानी विश्वास-योग्य है ?

८—क्या उसमें यथेष्ठ संघर्ष है ?

९—क्या कहानी का अन्त सचमुच हृदय पर प्रभाव डालता है ? इसमें एक दसवाँ प्रश्न भी जोड़ा जा सकता है।

१०—क्या कहानी की भाषा सरल, सुबोध, व्यंजना-प्रधान और मुहावरेदार है ?

हिन्दी कहानी का विकास

वैसे तो सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान', मुंशी इंशाअल्ला की 'रानी केतकी की कहानी' जिसमें 'हिंदी छुट और किसी भाषा का पुट' न था, राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद का 'राजा भोज का सपना', भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का 'एक विचित्र स्वप्न' आदि कहानियाँ उन्नीसवीं शताब्दी में लिखी जा चुकी थीं; किन्तु आधुनिक कहानी का आरम्भ बीसवीं शताब्दी के उदय और सरस्वती पत्रिका के साथ हुआ। यद्यपि आरम्भ में बाहर से लाये हुए पौदे की भाँति हिंदी कहानी का आरम्भ बँगला और अँग्रेजी के अनुवादों से हुआ, फिर उसने यहाँ जड़ पकड़ ली और लोक रुचि का आश्रय पाकर खूब फली-फूली। हिंदी कहानी को जन्म देने का श्रेय कई आदमियों को दिया जाता है, उनमें किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, गिरजाकुमार घोष, जो पार्वतीनन्दन

के नाम से लिखते थे, प्रमथनाथ भट्टाचार्य और बंगमहिला प्रमुख हैं। इन लेखकों की सभी कृतियाँ अनुवाद नहीं हैं। आचार्य शुक्लजी की 'ग्यारह वर्ष का समय', श्रीमती बंग-महिला की 'दुलाईवाली' आदि कहानियाँ मौलिक हैं।

'सरवस्ती' की भाँति कहानी-साहित्य के विस्तार में 'इन्दु' को भी श्रेय है। सन् १६१० ई० में 'प्रसादजी' की देख-रेख में 'इन्दु' का उदय हुआ। इसी पत्रिका को सन् १६११ में प्रसादजी की पहली कहानी 'ग्राम्या' को प्रकाशित करने का श्रेय मिला। इस पत्रिका द्वारा जी० पी० श्रीवास्तव आदि और भी कहानी-लेखकों का निर्माण हुआ। सन् १६१३ में श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की पहली कहानी 'रक्षाबन्धन' निकली। सन् १६१४ में पंडित ज्वालादत्त शर्मा ने भी 'सरस्वती' में कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। सन् १६१५ में गुलेरीजी की सुप्रख्यात कहानो 'उसने कहा था' प्रकाशित हुई। सन् १६१६ में प्रेमचन्दजी की पहली कहानी 'सरस्वती' में छपी। सन् १६१६ में 'हृदयेश' आख्यायिका-क्षेत्र में आये। सन् १६२० में सुदर्शनजी की पहली कहानी प्रकाशित हुई। इस प्रकार कहानी साहित्य की उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि होती रही।

प्रस्तुत संग्रह के तीन भाग हैं—प्राचीन, नवीन और नवीनतम्। यद्यपि शैली और कथानक की दृष्टि से प्राचीन कहानियाँ वर्तमान

प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ

कहानियों की अपेक्षा कुछ प्रारम्भिक-सी जान पड़ती हैं, तथापि उनकी सांकेतिकता और उनका तथ्य-निरूपण उनको हमारे आदर का विषय बनाता है। कहानी के विकास की दृष्टि से भी उनका अध्ययन आवश्यक है, विशेषकर जब कि वर्तमान कहानी भी उनसे प्रभावित हो रही है।

यद्यपि नवीन और नवीनतम् कहानियों के बीच में कोई रेखा खींचना कठिन है, तथापि नवीनतम कहानी एक निश्चित दिशा की

ओर बढ़ रही है। नवीनतम प्रवृत्तियों के बीज, नवीन काल के बीच में ही जैनेन्द्र प्रभृति लेखकों की कृतियों में अंकुरित होने लग गये थे।

वर्तमान कहानी की गति-विधि

वर्तमान कहानी यथार्थवाद से अधिक प्रभावित है। इसी प्रभाव के कारण भाषा सरलता की ओर जा रही है। कहीं-कहीं तो वह मानसिक सूत्रों का रूप धारण कर लेती है; किन्तु इस भाषा में भी हृदय धड़कन सुनाई पड़ती है। इन कहानियों में कथानक और कथोपकथन की अपेक्षाकृत कमी होती जाती है और उसके साथ विवेचन और विश्लेषण की मात्रा बढ़ जाती है। यह युग प्रगति का है और दीनों, शोषितों और दलितों का पक्ष तो मुन्शी प्रेमचन्दजी ने भी लिया था; किन्तु आजकल के लेखक जीवन की विषमताओं पर अधिक बल देकर वर्ग भेद को मिटाना चाहते हैं। इस संग्रह में श्री यशपाल जी की 'कर्मफल' शीर्षक कहानी और ऊषादेवी मित्रा की 'समझौता' शीर्षक कहानियों में सामाजिक विषमताओं का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। ऊषादेवीजी की कहानी में कुछ-कुछ गाँधीवादी ढंग से हृदयपरिवर्तन भी कराया गया है। आजकल कु और सु के बीच की रेखा भी इतनी निश्चित नहीं रही है, जितनी कि पहले थी। अब व्यक्ति के पतन के लिए समाज उत्तरदायी ठहराया जाता है। इस कारण व्यक्ति के साथ सहानुभूति की मात्रा बढ़ गई है। सभी प्रकार के बन्धन शिथिल होते जाते हैं। इस उथल-पुथल का क्या परिणाम होगा, यह कहना कठिन है। यह साहित्य हमको एक नये सामाजिक संगठन की ओर लिए जा रहा है। उसकी रूप-रेखा अभी निश्चित नहीं है ; किन्तु इस विषमता को दूर करने के लिए एक उदात्त धार्मिक भावना की-भी जरूरत होगी। वह उसकी आध्यात्मिकता को भी अपनायगी। वर्तमान कहानी ने प्राचीन

कहानी की सांकेतिकता और कहानी-दर-कहानी लिखने की प्रवृत्ति कुछ-कुछ अपनाई है। वह भाषा की सरलता की ओर भी जा रही है। जहाँ कहानी ने प्राचीन कहानी के इन बाहरी रूपों को अपनाया है, वहाँ उसकी आध्यात्मिकता को भी अपनायगी।

परिचय

बड़ा कौन ?—इस कहानी में इन्द्रियों और प्राणों की प्रतिद्विन्द्विता की कथा है। इस कहानी के सहारे आत्म-तत्त्व की महत्ता व्यञ्जित की गई है जिस प्रकार इन्द्रियों का आधार प्राण है, उसी प्रकार प्राणों का जीवात्मा है और जीवात्मा का आधार परमात्मा है।

दान का पारखी न्योला—इस कथा में बतलाया गया है कि दान की महत्ता उसके परिमाण में नहीं है, वरन् दाता के त्याग की भावना में है। ब्राह्मण ने अतिथि-सत्कार में अपना सर्वस्व देकर उस यज्ञ में अपने सारे परिवार की आहुति दे दी। बाइबिल में भी, विधवा की कौड़ी (Widows mite) की ऐसी ही कहानी है।

कुक्कुर-जातक—जातक शब्द का अर्थ है—जन्म से सम्बन्ध रखने वाला। जातक-कथाओं में बुद्धदेव के पूर्वजन्म की कथाएँ हैं। बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व भगवान् बुद्ध बोधिसत्व कहलाते थे। ये कथाएँ भगवान् बुद्ध ने स्वयं अपने सिद्धान्तों के उद्घाटन में कही हैं। कुक्कुर-जातक में यह दिखलाया गया है कि बुद्धदेव अपने अनुयायियों की किस प्रकार रक्षा करते हैं। अनुत्तरदायी राज्य शासन में जो न्याय की विडम्बना होती है, उसकी ओर भी इस कथा में संकेत है। जातक-कथाएँ वालमीकीय रामायण के बाद की हैं; क्योंकि उनके दशरथ-जातक में रामचरित का उल्लेख है। किन्तु, महाभारत से पहले की है या बाद की, इसमें सन्देह है। महाभारत के तीन संस्करण हुए हैं। सम्भव है, पहला संस्करण जातक-कथाओं से पहले का हो।

अक़ल बड़ी कि भैंस ?—इसका शीर्षक ही इस कहानी का उद्देश्य बतलाया है। 'हितोपदेश' एक प्रकार का सङ्कलन-ग्रन्थ है। यह 'पञ्चतन्त्र' पर आश्रित है। विष्णु शर्मा ने कहानियों द्वारा

राजकुमारों को सन्धि, विग्रह आदि विषयों से सम्बन्धित राजनीति का ज्ञान कराया था। 'हितोपदेश' का भी निर्माण-समय निश्चित नहीं है। यह छठी शताब्दी से पूर्व का नहीं हो सकता; क्योंकि पञ्चतंत्र छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध का है। साथ ही १३७३ के बाद का भी नहीं हो सकता; क्योंकि सन् १३७३ की लिखी हुई एक हस्त-लिखित प्रति वर्तमान है।

अवन्तिसुन्दरी का स्वयंवर—यह कथा 'दण्डी' के 'दश-कुमार चरित' से ली गई है। दश राजकुमारों ने अपने-अपने विचरणों का वृत्तान्त कहा है। ये कथाएँ आजकल की साहस कथाओं Adventure Tales की तरह लिखी गई थीं। 'दण्डी' का समय भी निश्चित नहीं है। वे भी छठी शताब्दी के माने जाते हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'—(जन्म १८८६—मृत्यु १९३७ ई०) 'प्रसाद' जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। कवि, दार्शनिक, नाटककार, उप-न्यासकार और कहानीकार के अतिरिक्त आप इतिहास के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। जिस प्रकार कविता और नाटक के क्षेत्र में आप पथ-प्रदर्शक रहे, उसी प्रकार कहानी-साहित्य को भी आपने एक नई परिपाटी दी। आप भावात्मक कहानी लिखनेवालों में अग्रगण्य हैं। 'प्रसाद'जी मुख्य रूप से कवि थे और उनका कवित्व उनकी कहानियों में भी स्थान-स्थान पर प्रस्फुटित होता रहता है। सामयिक समस्याओं की अपेक्षा चिरंतन सत्यों के उद्घाटन में आपका मन अधिक रमा। वैसे अछूतोद्धार आदि सामाजिक विषय भी उनसे अछूते नहीं रहे; किन्तु वे उनके विशेषाधिकार की वस्तुएँ नहीं कही जा सकतीं। सुख-दुःख, संयोग-वियोग, त्याग, सहानुभूति आदि की मनोवृत्तियों की आधार-शिलाओं पर 'प्रसाद' जी की कहानियों के प्रासाद खड़े हैं।

छाया, प्रतिध्वनि, आकाश-दीप, आँधी और इन्द्रजाल नाम के आपके पाँच कहानी-संग्रह निकल चुके हैं।

'प्रसाद'जी की ऐतिहासिक कहानियों ने अधिक ख्याति पाई है। प्राचीन वातावरण को वर्तमान में अवतरित करने की कला में आप सिद्धहस्त थे। दारिद्रय की अपेक्षा वैभव के चित्रण में आप अधिक सफल हुए हैं; किन्तु प्रस्तुत संग्रह में उद्धृत 'व्रत-भङ्ग' शीर्षक कहानी में सम्पन्नता तथा दारिद्रय के वैभव, समान बल के साथ दिखलाये गये हैं। दारिद्रय में भी एक शान और अकड़ है, जो सम्पन्नता के वैभव को स्वीकार नहीं करती और उसके आगे लक्ष्मी के कृपा-पात्रों को भी सिर झुकाना पड़ता है। इस कहानी में गरीबी की शान भी प्रेम, सौजन्य और सज्जनता के आगे नतमस्तक होते दिखाई गई है।

इस कहानी में पितृ-भक्ति और पत्नी-भक्ति में थोड़ा अन्तर्द्वन्द्व भी है; किन्तु वह अन्तर्द्वन्द्व अधिक विकास को प्राप्त नहीं हो सका है। 'प्रसाद'जी ने श्रेष्ठ कलश की अनुदारता और उसके पुत्र नन्दन की शालीनता को तुला में रखकर एक प्रकार से कर्त्तव्य-परायण नवयुवकों का पक्ष-समर्थन किया है और साथ ही यह दिखला दिया है कि वे प्राचीनता के उपासक होते हुए भी कोरे रूढ़िवाद से बहुत दूर थे।

पंडित विश्वम्भरनाथ, शर्मा कौशिक—(जन्म सन् १८९१ ई०) कौशिकजी की कहानियाँ प्रायः सामाजिक होती हैं। प्रस्तुत संग्रह की 'ताई' शीर्षक कहानी हिन्दू पारिवारिक जीवन से सम्बन्ध रखती है। यद्यपि इसमें हिन्दू स्त्रियों की मनोवृत्ति का चित्रण कुछ गहरा हो गया है, तथापि रामेश्वरी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बहुत सुन्दर है। हमको दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ेगा कि समाज में ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं है। अन्त में घोर पश्चाताप की

भावना के साथ रामेश्वरी का चरित्र-परिवर्तित हो जाता है। 'ताई' भी मानवता से शून्य न थी, किन्तु उनकी मानवता को प्रकाश में लाने के लिये गहरी चोट की जरूरत थी। शायद इससे कुछ हलकी चोट से भी काम चल जाता

कौशिकजी की इस कहानी के तीनों पात्रों की भाषा, तीन भिन्न-भिन्न स्तरों की है। पात्रानुकूल कथोपकथन लिखने में कौशिकजी सिद्धहस्त हैं। इस कहानी में बाबू साहब की उदार मनोवृत्ति दर्शनीय है।

श्री प्रेमचन्द्रजी—(जन्म १८६० मृत्यु १६३६ ई०) मुन्शी प्रेमचन्द की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी कला में प्रयत्न और कृत्रिमता नहीं है। वे सुधारक थे और मानवता के उपासक थे। वे मन की भीतरी तहों में छिपी हुई मानवता को प्रकाशित करने में विशेष कुशलता रखते थे। जैसा उनका निरीक्षण सूक्ष्म था, वैसी ही उनकी सहानुभूति व्यापक थी और अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये उनको सरल और हृदयग्राही भाषा लिखने का वरदान प्राप्त था।

प्रस्तुत संग्रह की 'बड़े भाई साहब' शीर्षक कहानी बड़ी मनोवैज्ञानिक कहानी है। मनोविज्ञान के पण्डितों का कथन है कि दूसरा लड़का अधिक प्रतिभाशाली होता है। इस कहानी में भी उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को अपनाया गया है। साथ-ही-साथ बड़े भाई साहब की उपदेश वृत्ति का—जो कि उनकी कुन्दजहनी की हीनता-ग्रन्थि (Inferiority complex) की प्रतिक्रिया थी—बड़ी स्वाभाविक रीति से चित्रण हुआ है। विद्यार्थी-जीवन में प्रायः सभी लोग अपने पाठ्य-क्रम की कठिनाई के सम्बन्ध में ऐसी बातें किया करते हैं। इस कहानी में यह दिखलाया गया है कि बड़े भाई साहब यद्यपि बड़े कठोर अनुशासन में विश्वास रखते थे, तथापि अवसर आने पर

उनके हृदय की बाल-वृत्ति जो उनके उपदेशों से कहीं स्वभाविक थी, जाग उठी। मुन्शीजी के चित्रण बड़े यथार्थवादी होते हैं, किन्तु उनकी कहानियाँ आन्तरिक तथ्य में आदर्शोन्मुख होती हैं। मुन्शीजी की भाषा बड़ी सरल, मुहावरेदार और प्रभावमयी होती है। उसमें उर्दू-हिन्दी का एक सुखद मिश्रण रहता है और उसको हम आदर्श हिन्दुस्तानी कह सकते हैं। उन्होंने कला को कला के लिये नहीं, वरन् जीवन के लिये अपनाया था।

श्री सुदर्शन—(जन्म सन् १८६६ ई०) आपका असली नाम बदरीनाथ है। आपका जन्म स्यालकोट में हुआ था। आपने बी० ए० तक शिक्षा पाई है। मुन्शी प्रेमचन्दजी की भाँति आपने भी उर्दू में लिखना आरम्भ किया था। सन् १६२० से हिन्दी के क्षेत्र में आये। आपकी कहानियाँ भी एक उच्च आदर्श लेकर चलती हैं। प्रस्तुत संग्रह की कहानी में दिखाया गया है कि सच्ची मानवता किसी स्वाभिमानी की स्वाभिमान रक्षा में हैं। इसके दोनों ही पात्र ईमानदारी और शालीनता में एक दूसरे से बढ़े हुए हैं। आपकी भाषा सरल, मुहावरेदार और चुभती हुई होती है।

श्री राय कृष्णदास—(जन्म १८६२ ई०) आपका जन्म काशी के एक सम्पन्न वैश्य-परिवार में हुआ। आप बड़े विद्य-व्यसनी और कला-प्रेमी हैं। आप एक उत्कृष्ट गद्य-काव्य-लेखक हैं और आपकी कहानियों में भी प्रायः गद्य-काव्य का सा आनन्द आता है। प्रस्तुत संग्रह की कहानो 'कला और कृत्रिमता' में बतलाया हैकि सच्ची कला 'स्वान्तः सुखाय' होतो है। दूसरे की प्रेरणा या धन के लोभ से जो कला अस्तित्व में आती है, वह सप्राण नहीं होती। यह कहानी कुछ-कुछ प्राचीन दृष्टान्तों के रूप में बनी है। आपकी शैली 'प्रसाद' जी की संस्कृत-शैली की ओर झुकी हुई है।

श्रीमती उषादेवी मित्रा—(जन्म संवत् १६०५) आपकी शिक्षा

कलकत्ता और जबलपुर में हुई। आपने हिन्दी में कई उपन्यास लिखे और प्रायः ढाई-तीन सौ कहानियाँ भी लिखी हैं। प्रस्तुत संग्रह की 'समझौता' नाम की कहानी अपने शीर्षक को पूर्णतया सार्थक करती है। इसमें जीवन से ही समझौता नहीं है, वरन् पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता का भी समझौता है। इसके अतिरिक्त इसमें माली परिवार के दैन्य और दारिद्रय का ऐसा यथार्थ चित्रण है कि पश्चिमी सभ्यता की बाहरी टीप-टाप और सफाई पसन्द करनेवाली कुसुम—जो अपने पतिदेव के क्षमाशील स्वभाव से मर्माहत होती थी—उनसे तथा दरिद्र परिवार से समझौता करने को तैयार हो जाती है। सम्पन्न वर्ग के लोग दरिद्र लोगों की जो उपेक्षा करते हैं, उसके मुख्य कारणों में उतनी उनकी हृदय-हीनता नहीं है जितना कि वास्तविक परिस्थिति का अज्ञान। यदि वह अज्ञान दूर किया जा सके, तो वर्गों में इतना भेद और संघर्ष न रहे। श्रीमती उषादेवी मित्रा की भाषा में बङ्गला का भावातिरेक परिलक्षित होता है। वाक्य भी टूटे से होते हैं। कहीं-कहीं तो वे पात्रों की मानसिक स्थिति के अनुकूल हैं और कहीं-कहीं अकारण भी टूटे हुए हैं। मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से यह कहानी बहुत अच्छी है और इसमें समझौते की जीवन-मीमांसा की ओर भी निर्देश है।

श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'—(जन्म सन् १८९९ ई०) आपका जन्म पीलीभीत के एक सम्पन्न कायस्थ-परिवार में हुआ था। अट्ठाईस वर्ष की अल्पायु में ही आपका स्वर्गवास हो गया। आपने अपनी कहानियों में 'बाण' की प्राचीन शैली को अपनाया है। चरित्र-चित्रण और भाव-विश्लेषण की अपेक्षा इसमें वाह्य-चित्रण और भावमय शब्दावली की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। भाषा के आडम्बर के भीतर एक कोमल भाव-लहरी बहती दिखाई देती है। इस संग्रह की 'प्रतिज्ञा' कहानी में विश्व प्रेम का ऊँचा आदर्शवाद है।

श्री जैनेन्द्रकुमार—(जन्म सन् १६०५ के लगभग) आपका जन्म अलीगढ़ जिले में कौड़ियागञ्ज नाम के गाँव में हुआ। आपको आरम्भिक शिक्षा जैन-गुरुकुल ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर में हुई। आप पर गाँधीवाद का अधिक प्रभाव है और आप बड़े चिन्तनशील व्यक्तियों में से हैं। आपकी कहानियाँ प्रायः आन्तरिक तथ्य की ओर झुकी रहती हैं। आप सोद्देश्य लिखना पसन्द करते हैं।

प्रस्तुत कहानी-संग्रह की 'कः पन्थाः' में विद्वानों को भी भ्रम में डालने वाले कर्म की समस्या है। इसमें कर्त्तव्य-सम्बन्धी अत्यधिक चिन्तन का दुष्परिणाम दिखाया गया है। कर्त्तव्य की दर्शनिक मीमसां की अपेक्षा संसार में प्रवेश करके कर्त्तव्य करते रहना अधिक श्रेयस्कर है।

श्री सियारामशरण गुप्त—(जन्म १८६५ ई०) आपका जन्म झांसी ज़िले के अन्तर्गत चिरगाँव नाम के कसबे में हुआ है। आपके अग्रज श्री मैथिलीशरण गुप्त का नाम वर्तमान हिन्दी के अग्रंदूतों में है और आपने भी कविता के क्षेत्र में अच्छी ख्याति पाई है। श्वास-रोग के कारण अस्वस्थ रहते हुए भी आपने हिन्दी को कई अच्छी रचनाएँ दी हैं।

इस संग्रह की 'काकी' शीर्षक कहानी में बाल-मनोविज्ञान का अच्छा पुट हैं। बालक का सरल विश्वास करुणा पर सान चढ़ा देता है

श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा—(जन्म १८६५ ई०) आपका जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित कायस्थ-परिवार में हुआ है। आपके सभी भाई साहित्यिक रुचि रखते हैं। हिन्दी के हास्य-रस-सम्बन्धी साहित्य में आपका बहुत ऊँचा स्थान है। आपके लिखे हुए 'महाकवि चच्चा', "मगन रहु चोला' और 'मेरी हजामत' नाम के ग्रंथों ने पर्याप्त ख्याति पाई है। आपके हास्य में जीवन की फालतू उमंग के साथ

कुछ उद्देश्य भी व्यञ्जित रहता है। नई-नई प्रवृत्तियों की धुन के पक्के सनकी लोगों के आपने बड़े सुन्दर शाब्दिक व्यङ्गय-चित्र खींचे हैं। प्रस्तुत कहानी में विदेशी संग्रहकर्ताओं के उत्साह और उनकी मूर्खता का तथा पुरानी अजूबा चीजों के दुकानदारों की चालाकी का अच्छा खाका खींचा गया है।

विलवासीजी अन्नपूर्णानन्दजी के ही मानसिक पुत्र हैं। वे बड़े सदाशय हँसोड़ हैं। अन्नपूर्णानन्दजी के हास्य को सजीवता प्रदान करने के लिए वे उपस्थित हो जाते हैं। विलवासीजी बड़े प्रत्युत्पन्न मति हैं। 'मगन रहु चोला' का प्रायः सभी कहानियों का स्केच बिलवासी मिश्र से सम्वन्धित है। उनका व्यक्तित्व पिक-निक के-से हास्य का आलम्बन है। वे ऐसे पात्र हैं जो भुलाये नहीं जा सकते हैं। 'अकबरी लोटा' नामकी कहानी में उनको बुद्धि-कौशल का परिचय मिलता है। साथ ही उसमें वनारस के पुरानी पीतल विक्रेताओं की चालाकी और अंग्रेज संग्रह कर्ताओं की उत्साह पूर्ण मूर्खता पर करारा व्यङ्गय है।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी—(जन्म सन् १८९९) आपका जन्म कानपुर के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ है। आपने अपने मामा के यहाँ बाल्य-काल व्यतीत किया और मिडिल तक शिक्षा पाई। आपने होम-रूल-लीग के लाइब्रेरियन की स्थित में स्वाध्याय-द्वारा अपनी योग्यता सम्पन्न करके हिन्दी-साहित्य में प्रवेश किया। आपके साहित्यिक जीवन का आरम्भ कवि के रूप में हुआ और पीछे से आपकी प्रतिभा कथासाहित्यिक की ओर झुकी। आपने कई उपन्यास लिखे हैं और आपके सात या आठ कहानी-संग्रह निकल चुके हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कहानी की विशेषता उसकी प्रतीकात्मक (Symbolic) भाषा है। लकड़ी बेचनेवाली विधवा सूखी लकड़ी की प्रतीक है, जिसका अस्तित्व केवल जलने के लिए है। लकड़ी

चीरनेंवाला भी वृद्ध है और उसका-जीवन-कार्य थोड़ा ही शेष रहा है। इस बात को भी प्रतीकात्मक भाषा में कहा गया है कि लकड़ीं सब चिर गई है केवल एक कुंदा शेष है। इसमें गरीब लोगों के निरीह जीवन का चित्रण है, जिसमें रोमांस की भी क्षीण झलक है।

श्री बेचन शर्मा उग्र—(जन्म संवत् १६०१) आप मिर्जापुर के रहनेवाले हैं और बड़े फक्कड़ स्वभाव के हैं। यद्यपि आप पर घासलेटी साहित्य लिखने का आरोप लगाया गया तथापि प्रस्तुत कहानी इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि जो कुछ उग्रजी ने लिखा वह सब घासलेटी नहीं है। 'उसकी मां' शीर्षक कहानी में करुणा फूट पड़ती है। यद्यपि लड़कों पर आतङ्कवादी होने का आरोप है तथाति वे पूर्ण देशभक्त हैं, और उनमें गांधीवादी शांति, प्रसन्नता और सहनशीलता प्रधान वीरता है। राय साहब की अंतर्द्वन्द्वपूर्ण दुर्बलता दर्शनीय है।

श्री भगवतीशरण वर्मा—(जन्म संवत् १६०३) आप कवि भी हैं और उपन्यास और कहानी लेखक भी है। प्रस्तुत कहानी इंसटालमेंट नाम के संग्रह से ली गई है। वर्माजी चलती हुई मुहावरेदार भाषा लिखने और शब्द चित्र खींचने में बड़े सिद्धहस्त हैं। इस कहानी पर हिन्दू स्त्रियों की धर्म मीमांसा और पंडितों की ठगविद्या पर अच्छा व्यङ्ग्य है। बिल्ली को एक अप्रत्याशित रूप से चलता-फिरता कर एक साथ गाम्भीर्य से हास्य का वातावरण उपस्थित कर दिया गया है।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—(जन्म सन् १६०६) अपका जन्म कोट अदू नाम के पंजाब के एक गाँव में हुआ। आप गुरुकुल-कांगड़ी के स्नातक हैं। सन् १६२२ में आपकी पहली कहानी 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई थी। आप कहानीं-लेखक ही नहीं, कहानी कला के सफल आलोचक भी हैं। 'विशाल-भारत' में छपा हुआ कहानी की

आलोचना-सम्बन्धी लेख, इस बात का प्रमाण है। 'चन्द्रकला', 'भय का राज्य' और 'अमावस' नाम से आपके तीन कहानी संग्रह निकल चुके हैं। प्रस्तुत संग्रह की 'डाकू' नाम की कहानी 'अमावस' से ली गई है। आपकी इस कहानी में वातावरण-चित्रण की शक्ति दर्शनीय है। इसमें धर्मशाला का अंधकारमय तामसी वातावरण है और दरबार साहब का चित्त को प्रसन्नता देने वाला और चरित्र को ऊपर उठानेवाला धार्मिक वतावरण भी है। दरबार साहब के धार्मिक वातावरण के प्रभाव से डाकू का चरित्र सुधर जाता है।

श्री अज्ञेयजी—(जन्म १९११) आपका पूरा नाम सच्चिदानन्द हरीनन्द वात्स्यायन है! आप कर्तापुर (पंजाब) के मूल-निवासी हैं। आपके पिता डॉक्टर हीरानन्द शास्त्री, पुरातत्व-विभाग में उच्च पद पर रह चुके हैं। आपका जन्म कासिया गोरखपुर के प्राचीनतामय वातावरण में हुआ है। आप में प्राचीन और नवीन सभ्यता के संस्कारों का सुखद सम्मिश्रण है। आपने १९२९ में बी. एस-सी. पास किया और डेढ़ वर्ष तक अँग्रेजी एम. ए. का अध्ययन करके पढ़ाई छोड़ दी। अपका जीवन और रहन-सहन कलामय है। आप अच्छे चित्रकार और मूर्ति-निर्माता भी हैं। आप यद्यपि प्रगतिशील कहानियाँ लिखते हैं, तथापि उनमें काव्य का पुट अधिक रहता है। आपके जीवन में क्रांति की भावना अधिक रही है और विप्लव से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ भी लिखी हैं। प्रस्तुत संग्रह की 'शत्रु' शीर्षक कहानी आपके 'विपथगा' नाम के कहानी-संग्रह से ली गई है। इसमें दिखलाया गया है कि नवयुवक प्रायः निरुद्देश्य जीवन व्यतीत करते हैं और थोड़ा-कारण पाकर जिधर जरा गुञ्जाइश देखी उधर ही झुक जाते हैं। इसका नायक पहले धर्म का विरोध करता है, फिर पूँजीपतियों का अंत में राजसत्ता का। लेखक ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य अपने से ही लड़ता है, और आकृष्ट होता है।

श्री यशपाल—आपने बी. ए. और प्रभाकर परीक्षा पास करके राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। आप विप्लव के सम्पादक है। प्रायः आपने विप्लव और प्रगति की कहानियाँ लिखी हैं। 'पिंजरे की उड़ान' और 'ज्ञान-दान' आपके दो कहानी-संग्रह निकल चुके हैं। आपने कई उपन्यास भी लिखे हैं उनमें दादा कांमरेड और दिव्या ने विशेष ख्याति पाई है। प्रस्तुत संग्रह की कहानी 'कर्मफल' 'पिंजरे की उड़ान' से ली गई है। इसमें गरीबों की निरीह अवस्था का बड़ा करुणाजनक चित्र है। एक मकान की ऊपर और नीचे की मंजिल में सोनेवाले लोगों की परिस्थिति का अन्तर करुणा को तीव्र बना देता है। इस कहानी में सम्पन्न वर्गों के हृदय-हीन व्यवहार का कटु यथार्थवाद है। सेठानी माँ की इस प्रार्थना में कि 'मेरी बेटी का कष्ट दूर करो' और यों जिसने बेटी की नींद बिगाड़ दी, उसका सत्यानाश हो कितना स्वार्थ भरा हुआ है!

श्री उपेंद्रनाथ 'अश्क'—(जन्म १६१० ई०) आपका जन्म पंजाब के जालंधर नगर में हुआ है। सन् १६१३ में आप बी० ए० पास करके अपने ही स्कूल में अध्यापक हो गये; लेकिन इनकी प्रतिभा एक विस्तृत क्षेत्र चाहती थी। इसके लिए ये लाहौर चले गये। वहाँ समाचार-पत्रों में काम करते रहे और साथ-ही-साथ उर्दू में कहानियाँ भी लिखने लगे। सन् १६३३ में आपकी पहली कहानी 'हँस' में छपी। स्वर्गीय प्रेमचन्द जी का प्रोत्साहन पाकर आप हिन्दी के क्षेत्र में आये। हिन्दी में आप एकांकी नाटककार के रूप में अधिक प्रख्यात हैं। आपके एक उपन्यास और दो कविता-संग्रह भी निकल चुके हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कहानी में हिन्दू स्त्रियों के पराधीन जीवन का अच्छा चित्रण है। वह कहानी के 'पिंजरा' नाम को सर्थक करता है। धन एक ही मनुष्य की परिस्थिति में अन्तर उत्पन्न कर देता है,

फिर वह मनुष्य-मनुष्य में तो सहज ही अन्तर डाल सकता है। धन का मद पूर्व-उपकारों पर भी पर्दा डाल देता है। 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।' स्थानीय ब्योरा देने में 'अश्क'जी ने बड़ी कुशलता प्राप्त की है।

श्री पहाड़ी—(जन्म १६१३ ई०) आपके 'सफर' और 'छाया' नाम के दो कहानी-संग्रह निकल चुके हैं। प्रस्तुत संग्रह की कहानी 'तमाशा' में केवल भूतवाद ही नहीं है, वरन् स्वप्न के प्रतीकों की-सी व्याख्या भी है। सत्या का खिलौना वाला स्वप्न और उस खिलौने-वाले का कहना कि 'जल्दी चलो मुझे देर होती है' सत्या की भावी मृत्यु का संकेत था। ये सब वातें सत्य हों या न हों; किन्तु कुछ लोग ऐसा विश्वास अवश्य करते है।

—गुलाबराय

प्राचीन

बड़ा कौन ?

अहंमन्यता का संक्रामक रोग मनुष्य जाति में चिरकाल से व्याप्त हो रहा है किन्तु एक वार, संसर्ग-दोष से इन्द्रियों, मन और प्राणों में भी इस रोग का आक्रमण हुआ। पहले-पहल प्राणों द्वारा श्रेष्ठता की बात चलाई जाने पर सब ने अपनी-अपनी डींग मारना शुरू की। सब से पहले हाथ उठा और कहने लगा—"संसार में कर्म की प्रधानता है और कर्म का मैं प्रतीक हूँ, इसी से मेरा नाम 'कर' रक्खा गया है। मैं वायु की भाँति स्पर्श रूप से सब इन्द्रियों में व्याप्त हूँ, श्रेष्ठता का पद मुझे ही मिलना चाहिए।"

नासिका कुछ सिकुड़ी-सी हो बोलने लगी—"सब का नौकर होकर इतनी बढ़-बढ़ कर बातें न मार, मेरी श्रेष्ठता तो लोक में प्रमाणित है। मनुष्य अपनी नाक के लिए ही सब कुछ करता है। मेरे चले जाने से उसका सर्वस्व अपहरण हो जाता है। मेरा जन्म सिद्ध शीर्ष-स्थान सुरक्षित रहना चाहिए।"

कान भी खड़े हो गये और अपना दावा पेश करने लगे—"नाक तो अपशकुन के लिए ही बनी है, उसकी छींक सब शुभ कार्यों में बाधक होती है। इसको यहाँ आने ही क्यों दिया गया। शास्त्रों में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कहा गया है और गुरु-मन्त्र मेरे ही द्वारा दिया जाता है।

भगवान् के निश्वास-स्वरूप और आध्यात्मिक ज्ञान के अमित भण्डार वेदों ने मेरी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए 'श्रुति' नाम धारण किया, फिर मेरे उच्चतम पद के अधिकारी होने में सन्देह करना कोरा हठवाद है।"

आँखों से यह गर्वोक्ति न सही गई और वे लाल होकर बोलीं—"तेरा अस्तित्व तो अमेंठे जाने के लिए ही है, देख आँखों देखी के सामने तेरी सुनी-सुनाई बात पर कौन विश्वास करता है ? 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणं' मुझको ही सब इन्द्रियों का प्रतिनिधि मान कर यह वाक्य कहा गया है। मेरे बिना संसार का अस्तित्व ही नहीं रहता। मेरी स्पर्द्धा करना मूर्खता है, सत्य को मिथ्या प्रमाणित करना है। मेरा मूर्धन्य स्थान निर्विवाद है।"

जिह्वा भी अपनी बात कहने को आकुल हो उठी। वह कहने लगी—"बहन ! वृथा क्यों आँख दिखाती हो, मेरी क्या होड़ करोगी ? वाणी मेरे अधीन है। वाणी के ही कारण मनुष्य अन्य जीवधारियों में श्रेष्ठ गिना जाता है, मेरे बिना संसार में रस नहीं, इसी से मेरा नाम 'रसना' पड़ा। मैं न होती तो आप लोग अपनी-अपनी बात भी न कह पाते। मेरा आश्रय लेकर आप लोगों ने एक स्वर से मेरी महत्ता सिद्ध कर दी है।"

वाणी का वार्त्तालाप सुन चंचलगति मन बैठा न रह सका। उसने आगे बढ़ कर कहा—"चलरी वाचाल ! बक-बक तो तोते भी कर लेते हैं। तेरा आदि-प्रेरक तो मैं ही हूँ। मन ही मनुष्यों के बन्धन का और मोक्ष का कारण है 'मन एव मनुष्याणां बन्धमोक्षकारणं' सब कुञ्जी मेरे ही हाथ है। इसलिए प्रतिष्ठित पद के लिए मेरा ही अभिषेक होना चाहिए।"

मनुष्य तो अपनी-अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने की धुन में न धन की परवाह करते हैं और न जन की और जब यह रोग व्यक्तियों से राष्ट्रों में पहुँच जाता है, तब तो भीषण जन-संहार से सारी पृथ्वी रक्त-रंजित हो जाती है। श्रेष्ठता निर्णय करने के लिए राष्ट्रों में पशु-बल-प्रधान युद्ध ही अन्तिम न्यायालय माना जाता है किन्तु महत्ता की इस होड़ में प्रतिद्वन्द्वियों ने कुछ सद्बुद्धि से काम लिया। जब किसी प्रकार निर्णय की सम्भावना न दिखाई दी और वाक्-युद्ध के आगे अस्त्र-शस्त्र सम्हालने की नौबत आई, तब वे लोग प्रजापति के पास निर्णय कराने गये और उनसे पूछने लगे—हममें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कौन है? प्रजापति ने कहा कि जिसके अस्तित्व के बिना सब का काम बन्द हो जाय और सारा शरीर शव की भाँति अपवित्र और निश्चेष्ट हो जाय वही तुम सब लोगों में श्रेष्ठ है।

यह बात सब को मान्य हुई। पहले हाथ ने असहयोग किया और वह अपनी अहंमन्यता में यही सोचता रहा कि उसके बिना सब काम बन्द हो जायगा लेकिन साल-भर तक बाहर रहने के बाद जब वह लौटा तो उसने शरीर को ज्यों का त्यों पाया। नासिका को भी यह अनुभव हुआ क्योंकि आखिर नकटा भी जीवित रहता है। कान, आँख और जिह्वा का भी गर्व चूर हो गया क्योंकि बहरे, अन्धे, गूँगे सभी अपना-अपना काम चला लेते हैं। मन तो सहज में अपनी हार स्वीकार न करता किन्तु जब अबोध शिशुओं को अपने हाथ पैर चलाते देखा, तब उसने झगड़ा करना वृथा समझा। प्राणों के असहयोग करते ही सब के कार्य शिथिल हो गये और सारा शरीर शव के समान निश्चेष्ट हो गया। उसके

जाने से सभी इन्द्रियों का अस्तित्व मिट-सा गया। फिर मन-सहित सभी इन्द्रियों ने कहा—'हमारी जो श्रेष्ठता है, वह तुम्हारे ही अधीन है। हम तुमको ही सब में श्रेष्ठतम और ज्येष्ठतम स्वीकार करते हैं।'

(छान्दोग्य उपनिषद् के आधार पर)

दान का पारखी न्योला

पाण्डवराज युधिष्ठिर अपने अश्वमेध-यज्ञ की पूर्त्ति के दिन लाखों ब्राह्मणों और अतिथियों को भोजन करा कर उन्हें अमित धन-धान्य और वस्त्राभूषणों से सन्तुष्ट कर विदा दे रहे थे। चारों ओर स्वस्ति-वाचन और जय-जयकार हो रहा था, इतने में एक न्योला आया। उसका आधा शरीर सोने का था। वह यज्ञ-भूमि में लोटने लगा और थोड़ी देर बाद निःश्वास भर कर क्रोध और निराशा-भरे शब्दों में बोला—"यह यज्ञ भी ठीक नहीं हुआ।"

यह सुनकर ऋत्वक और होताओं को आश्चर्य हुआ और उनके स्वाभिमान को भी कुछ ठेस लगी। उन्होंने न्योले से पूछा कि यहाँ तो महाराज ने किसी बात की कमी नहीं रक्खी, फिर तुम ऐसा क्यों कहते हो।

न्योले ने कहा—"कुछ वर्ष हुए देश के एक हिस्से में भयङ्कर अकाल पड़ा और अन्न-जल के अभाव में लोग अस्थि-पंजरावशेष होकर मरने लगे।'

"एक ब्राह्मण कहीं से थोड़े-से जौ माँगकर लाया और उनको कूट-पीसकर सत्तू बनाया। कई दिन के अनशन के पश्चात् उस परिवार के लोगों को अन्न के दर्शन हुए और ब्राह्मण ने अपनी स्त्री-पुत्र और पुत्र-वधू के लिए सत्तू के चार भाग किये ही थे कि इतने में द्वार पर आये हुए एक क्षुधा-पीड़ित अतिथि की आर्त्त पुकार सुनाई पड़ी।

सब से पहले ब्राह्मणी ने अपना भाग बाहर ले जाकर

अतिथि को अर्पण किया। उसको खाकर अतिथि ने कहा— इससे तो मेरी क्षुधा और भी प्रज्वलित हो गई है। उसकी शान्ति के लिए मुझे कुछ और अन्न चाहिए।

उसके बाद ब्राह्मण ने भी अपना भाग अतिथि देवता की भेंट कर दिया किन्तु इससे भी उसकी तुष्टि न हुई! ब्राह्मण के पुत्र और पुत्र-वधू ने भी अतिथि-सेवा में योग देने के लिए अपने-अपने भाग का परित्याग कर दिया। अतिथि आशीर्वाद देता हुआ अपने घर गया; किन्तु उसी के साथ परिवार के चारों प्राणियों के प्राण पखेरू भी परलोक को सिधार गये।

सत्तू की गंध पाकर मैं वहाँ चला गया। भाग करने में सत्तू के कुछ कण जमीन पर गिर पड़े थे। मैं वहाँ लेट गया और उठने पर देखा कि जहाँ सत्तू के कण मेरे शरीर में लगे थे, वहाँ मेरा शरीर सोने का हो गया। तब से अपनी देह को पूरे सोने की करने के उद्देश्य से मैं कई यज्ञों में गया और वहाँ की भूमि में लोटा; किन्तु मेरी देह जैसी-की तैसी रही। धर्मराज के यज्ञ में मैं बड़ी आशा लगाकर आया था; किन्तु वहाँ मेरा एक बाल भी स्वर्ण न हुआ। ब्राह्मण के उस यज्ञ की कौन समता कर सकता है?"

(महाभारत से)

कुक्कुर जातक

पूर्वकाल में जब राजा ब्रह्मदत्त बनारस में राज करते थे, तब एक बार बोधिसत्त्व ने अपने पूर्वकर्म के अनुसार कुत्ते की योनि में जन्न लेना स्वीकार किया और सैकड़ों कुत्तों का एक गोल बनाकर एक महाश्मशान में रहने लगे।

एक दिन राजा की आज्ञा से राज-रथ, जिसमें श्वेत घोड़े जुता करते थे, बाहर निकाला गया। उसमें बैठकर राजा उद्यान की सैर करने गये, सायंकाल को राज-भवन में लौट आये। रथ का साज रात को राज-प्राङ्गण में टाँग दिया गया और वर्षा होने के कारण वह भीग गया। भीगे हुए चमड़े की गंध पाकर राज-भवन के पालतू कुत्ते ऊपर से उतर आये और उन्होंने चर्म काट डाला।

भोर होते ही कर्मचारीगण राजा के पास दौड़े गये और हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे—"देव! रात को मोरी के रास्ते बाहर के कुत्ते आँगन में घुस आये और श्रीमान् के रथ का साज काट गये।" राजा ने क्रोध के आवेश में आज्ञा दे दी कि जो कुत्ता दिखाई पड़े, उसे एकदम मार दिया जाय। कुत्तों पर बड़ी विपत्ति आई! जहाँ-जहाँ कुत्ते दिखाई देते, वहीं मारे जाते। जो कुत्ते जान बचाकर भाग निकले, उन्होंने श्मशान में जाकर बोधिसत्त्व की शरण ली। बोधिसत्त्व ने जाति-भाइयों के इतनी संख्या में आने का कारण पूछा। उन्होंने बतलाया कि राज-रथ के साज का नुकसान हो जाने के कारण उन सब की जान खतरे में है। सभी कुत्तों के मारे जाने का हुक्म हुआ है।

सब हाल सुनकर बोधिसत्त्व विचार-मग्न हो गये। उनके ध्यान में यह बात आई कि चारों ओर से सुरक्षित राज-भवन में बाहर के कुत्तों की गति नहीं हो सकती। यह काम राज के पालतू कुत्तों का है। असली अपराधी छूटे जाते हैं और बेगुनाह मारे जायँगे। यदि मैं राजा का ध्यान वास्तविक अपराधियों की ओर आकर्षित कर दूँ, तो अपने जाति-भाइयों की जान बचा सकूँगा। अपने साथियों को साहस बँधाते हुए बुद्धदेव ने कहा—"भाइयो! निर्भय रहो, मैं आप लोगों को संकट से मुक्त करने का उद्योग करता हूँ। अभी राजा से मिलने जा रहा हूँ। जब तक मैं राज-भवन से न लौटूँ, तब तक आप लोग शान्तिपूर्वक यहाँ विश्राम कीजिए।" ऐसा कहकर उन्होंने दस पारमिताओं का ध्यान किया और यह अधिष्ठान (दृढ़ संकल्प) कर कि कोई मेरे ऊपर ईंट-रोड़ा-पत्थर मुगदर आदि न फेंके, नगर के भीतर अकेले ही प्रवेश किया। उनके अधिष्ठान के अनुसार किसी ने न उन पर हाथ उठाया और न रोष किया।

राजा अपने न्यायासन पर विराजमान थे। बोधिसत्त्व उछल कर सिंहासन के नीचे जा बैठे। राजपुरुषों ने बोधिसत्त्व को वहाँ से हटाना चाहा; किन्तु राजा ने उन्हें रोक दिया। थोड़ी देर विश्राम करने के पश्चात् वह दिव्य कुक्कुर राजा के सान्निध्य में पहुँच और उनको प्रणाम कर नम्रता-पूर्वक कहने लगा—"देव! क्या यह आपकी आज्ञा है कि शहर के सब कुत्ते मार डाले जायँ?"

'हाँ।"

"राजन्! किस अपराध में?"

"उन्होंने मेरे राज-रथ की काठी और तस्में खा डाले।"

"क्या श्रीमान् को मालूम है कि कौन-से कुत्तों ने यह अपराध किया है ?"

"यह हमको नहीं मालूम।"

"राजन्। बिना यह निश्चय किये कि किसने यह अपराध किया है, सबको प्राणदण्ड की आज्ञा देना न्याय नहीं है।"

"कुत्तों ने यह नुकसान किया है; इसलिए जहाँ-जहाँ वे मिलें, मैंने सब कुत्तों के मार डालने की आज्ञा दी है।"

श्रीमान् के कर्मचारी सब कुत्तों को मारते हैं; या कुछ इस दण्ड से बचे हुए हैं ?"

"हाँ राज-भवन के कुत्ते सुरक्षित हैं।"

"महाराज ! अभी तो आपने अपने श्रीमुख से कहा था कि सब कुत्ते जहाँ-जहाँ मिलें मार डाले जायँ, क्योंकि कुत्तों ने रथ-चर्म खाया है और श्रीमान् कहते हैं कि राज-भवन के कुत्ते दण्ड से मुक्त हैं। यह तो पक्षपात है, इसके द्वारा आप अगति को प्राप्त होंगे। राजा का पद धारण कर काँटे की तौल से न्याय करना चाहिए। यह दण्ड नहीं है, दुर्बलों की हत्या है।"

"श्रीमान् राजधर्म से च्युत हो रहे हैं"—ऐसा कहकर उस महासत्त्व ने बड़े मधुर स्वर में नीचे की गाथा सुनाई—

ये कुक्कुरा राजकुलम्हि वद्धा,
कोलेय्यका वण्ण बलूपपन्ना,
ते मे न बज्झा मयमस्य बज्झा,
नायं सघच्चा दुब्बल घातिकायं ॥

अर्थात्—जो कुलीन और बलशाली राज-कुल-पालित

कुत्ते हैं, वे तो मारे नहीं जाते, हम ग़रीव मारे जाते हैं। यह सब कुत्तों का मारना नहीं वरन् दुर्बल कुत्तों को मारना है)

"राजन्! राज-भवन के कुलीन कुत्तों को छोड़ दूसरों से बदला लेना न्याय नहीं, वरन् दुर्बलों की घृणापूर्ण हत्या है।"

राजा ने बोधिसत्त्व की बात सुनकर पूछा—"पण्डित! क्या आप जानते हैं कि किसने रथ के चमड़े को काटा है?"

"हाँ, आपके महल के कुलीन कुत्तों ने।"

"इसका सबूत?"

"हाँ, सबूत मैं दूँगा।"

"तो अपनी बात कहिए।"

बुद्धदेव ने राजा का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—"राज-भवन के कुत्तों को यहाँ बुलवाइए और कृपया थोड़ा-सा मठा और दूब (घास) भी मँगवा लीजिए।"

यह सामग्री मँगाई जाने पर महासत्त्व ने कहा—"घास के छोटे-छोटे टुकड़े करा कर मठे में मिलवा दीजिए और फिर राज-भवन के कुत्तों को उसे पिलवाइए।"

राजा ने बोधिसत्त्व के कथनानुसार घास मिला हुआ मठा कुत्तों को पिलवाने का आदेश दिया। राज-भवन-पालित जिस-जिस कुत्ते ने उसे पिया, उसने मट्ठे के साथ चर्म के टुकड़ों को वमन कर डाला।

राजा ने बोधिसत्त्व की सर्वज्ञता से प्रसन्न हो उनकी पूजा की और एक चाँदी का छत्र उनको अर्पण किया। उन्होंने राजा को पंचशील का उपदेश सुनाकर माता-पिता के प्रति धर्म का व्यवहार करने का आदेश दिया। बोधिसत्त्व ने राजा को श्वेत छत्र लौटा दिया और उनसे विदा माँगी। राजा ने

उनके तथा उनके साथी कुक्कुरों के भोजन का प्रबन्ध राज-भवन से कर दिया।

नोट—कथा में उल्लिखित दश पारमिताएँ (वे चरम सीमाएँ अर्थात् पूर्णताएँ जो बुद्धों को प्राप्त करना होती हैं) इस प्रकार हैं—(१) दान पारमिता (२) शील पारमिता (३) नैष्कम्म पारमिता (४) प्रज्ञा पारमिता (५) वीर्य पारमिता (दृढ़ संकल्प कर आलस रहित उद्योग) (६) क्षान्ति (शान्ति) पारमिता (७) सत्य पारमिता (८) अधिष्ठान पारमिता (दृढ़ संकल्प) (९) मैत्री पारमिता (१०) उपेक्षा पारमिता।

(जातक-कथाओं से)

अक्ल बड़ी कि भैंस ?

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः ।
काक्या कनकसूत्रेण कृष्णसर्पो निपातितः ॥

(अर्थात्—जो काम उपाय से हो सकता है, वह पराक्र से नहीं हो सकता । काकिनी ने सोने की जंजीर के द्वार काले साँप को मार डाला ।)

कर्कट के पूछने पर कि यह कैसे हुआ दमनक कहता है- किसी वृक्ष पर कौओं का एक जोड़ा रहता था । उनके ब को उस वृक्ष की खुखाल में रहने वाला एक काला सर्प जाता था । काकपत्नी दुबारा गर्भवती हुई, उसने अपने प से कहा—"नाथ ! इस वृक्ष को छोड़ देना चाहिए, इ रहने वाला काला साँप हमारी सन्तति को हमेशा खा जा है । कहा भी है—

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।
सर्पो च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥

(अर्थात् भार्या यदि दुष्ट हो, मित्र धूर्त्त हो, नौकर जव देने वाला हो और घर में साँप हो, तो मृत्यु होने में सं नहीं)"

कौए ने कहा—"प्रिये, डर की कोई बात नहीं । बार-ब मैंने इसके महान् अपराधों को सहा है, अब मैं इसको न करूँगा ।"

वायसी ने पूछा कि आप ऐसे बलवान् के साथ कि प्रकार लड़ सकेंगे ? कौए ने कहा—"प्रिये ऐसी शङ्का दो । इसकी जरूरत नहीं; क्योंकि—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
पश्य सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥

(अर्थात्—जिसकी बुद्धि तिसका बल है। बुद्धिहीन में कहाँ बल है ? देखो मदोन्मत्त सिंह को खरगोश ने मार डाला ·)"

फिर बोला—

"मन्दर नाम के पर्वत में एक सिंह रहता था । वह हमेशा पशुओं का वध किया करता था। इस संहार को देख, सब पशु मिलकर सिंह के पास गये और बोले—मृगेन्द्र ? एक साथ बहुत-से पशुओं का किस लिए हनन करते हो, अगर आपकी मर्जी हो, तो हम लोग स्वयं ही प्रति दिन बारी-बारी से एक पशु पहुँचा दिया करें।

· सिंह ने कहा—'जो आप लोगों को ठीक जँचे वही कीजिए, मुझे भोजन से मतलब है।' उस दिन से नित्य-प्रति एक जानवर भेजा जाने लगा। एक बार एक वृद्ध खरगोश की बारी आई। उसने सोचा—यदि जीवन की कुछ आशा हो, तो भयप्रद वस्तु की अनुनय-विनय की जाय और यदि मरना ही है, तो सिंह की खुशामद करने से क्या लाभ ? फिर मैं आराम से धीरे-धीरे ही क्यों न जाऊँ।

उसे आते देख भूख-प्यास से पीड़ित सिंह ने गरजकर कहा—'तू इतनी देर करके क्यों आया।' खरहे ने उत्तर दिया—'देव, मेरा अपराध नहीं है, यहाँ आते हुए मुझे रास्ते में एक दूसरे सिंह ने पकड़ लिया था। दुबारा लौटने की शपथ खाकर मालिक से निवेदन करने आया हूँ।' क्रुद्ध होकर सिंह ने कहा—'शीघ्र ही मुझे वहाँ ले चलो और उस दुरात्मा को दिखाओ, वह कहाँ रहता है।'

खरगोश उसे एक गहरे कुए के पास ले गया और कहा कि स्वामी, स्वयं ही इसके भीतर देख लें। कुँए के जल में सिंह का प्रतिविम्ब दिखाई दिया और उसके गर्जन की प्रतिध्वनि भी सुनाई पड़ी। क्रोध से दाँत निकालता हुआ, पंजे को हिलाता हुआ और दर्प से हाँफता हुआ, वह सिंह दूसरे सिंह पर आक्रमण करने के उद्देश्य से कुँए में कूद पड़ा और इस प्रकार वह काल का कवल बन गया।"

कौए ने कहा—इसीलिए मैं कहता था 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।' उसकी स्त्री बोली—'यह तो सब सुन लिया। अब हमको क्या करना है सो बतलाइये।' कौआ बोला—'सुनो यहाँ नजदीक में एक तालाब है, वहाँ राजपुत्र नित्यप्रति स्नान को आता है और स्नान के समय अपनी सोने की जंजीर उतार कर घाट के पत्थर पर रख देता है। उसको चोंच से उठाकर ले आना और वृक्ष के कोटर में रख देना।' राजपुत्र के जल में प्रवेश करने पर उसने ऐसा ही किया। जंजीर की खोज में प्रवृत्त राजपुरुष वहाँ पहुँचे और तरु की कोटर में जंजीर को पड़ा देख, उन्होंने उसमें रहने वाले साँप को मार डाला।

(हितोपदेश से)

अवन्ति सुन्दरी का स्वयंवर

इसी प्रकार दिन बीतते वसंत-ऋतु आ गई। ऋतुराज के आगमन से समस्त वृक्ष हरितवसन हो, फलों और फूलों से लद गये। इनकी मादक सुगन्ध से सुवासित वायु जिस ओर जाती उस भूभाग के प्रत्येक प्राणी की हृदय-कलिका को विकसित कर देती थी। इसी समय एक दिन मानसार की राज-कन्या अवन्ति-सुन्दरी अपनी सहेली बालचन्द्रिका के साथ नगर के बाहर अपने पिता की फुलवाड़ी में गई।

वहाँ पहुँच कर वह अपनी प्रिय सहेली के साथ घूमती-फिरती आम तथा अशोक के वृक्षों के नीचे बैठकर बातें करने लगी, कि इतने ही में राजवाहन भी अपने मित्र पुष्पोद्‌भव के साथ वहाँ जा निकला। वह अवन्तिसुन्दरी के रूप-लावण्य के विषय में बहुत-कुछ सुन चुका था; परन्तु अभी तक उसे उसके सुन्दर मुखारविन्द के दर्शन न हुए थे; अतएव वह सर्वदा इसी चिन्ता में रहता था कि किसी प्रकार वह एक बार अवन्ति-सुन्दरी को देखे। भाग्यवश आज उसकी मनोकामना पूर्ण हुई; अर्थात्—इन दोनों के फुलवाड़ी में प्रवेश करते ही बालचन्द्रिका ने इन लोगों को देख लिया और राजकुमारी की दृष्टि बचाकर उसने राजवाहन को अपनी ओर आने के लिए अँगुली से संकेत किया। "अन्धा क्या चाहे दो नैन" वाली कहावत चरितार्थ हुई। बालचन्द्रिका के संकेत को लक्ष्य करके राज-वाहन उसी ओर बढ़ा और जब वह निकट पहुँचा, तो अवन्ति सुन्दरी के रति के समान सुन्दर मुख को देखकर मन्त्र-मुग्ध-सा हो गया और हृदय में विचारने लगा कि धन्य होगा वह पुरुष, जो इस मृगनयनी का पति बनेगा।

इधर अवन्ति सुन्दरी ने जो राजवाहन को देखा, तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों साक्षात् कामदेव ही उसके सामने आकर खड़े हो गये हैं। वह प्रेमातुर होकर राजवाहन के मुख-मण्डल की ओर देखना चाहती थी, परन्तु लज्जावश वह उसकी ओर स्वतन्त्रता-पूर्वक नहीं देख सकती थी; फिर भी वह कनखियों से उसके चेहरे की सुन्दरता को देख-देखकर गद्‌गद् हुई जाती थी। वह मन ही मन यह विचार करने लगी कि यह कौन पुरुष है और कहाँ का निवासी है। धन्य होगी वह स्त्री, जो इसकी धर्मपत्नी के रूप में आठों पहर इस सुन्दर मुख का दर्शन करेगी। हे भगवान्! अब कैसे ज्ञात हो कि यह कौन है।

राजवाहन तथा अवन्तिसुन्दरी की स्तब्धता तथा उनके चपल नेत्रों ने बालचन्द्रिका को पूर्ण रूप से यह बतला दिया कि दोनों प्रेमी, विशेषकर अवन्ति सुन्दरी, एक दूसरे के परिचय के लिए विह्वल हैं; परन्तु फिर भी उसने सबके सन्मुख राजवाहन का पूर्ण परिचय देना असंगत समझ कर केवल यही कहा कि ये एक बहुत बड़े विद्वान् तथा बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं और मेरे स्वामी के प्रिय संगी हैं। ये तुम्हारी कृपा-दृष्टि के भिखारी हैं। जब राजकुमारी को इनके प्रेम का परिचय मिल गया, तो वह मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई और संकेत द्वारा राजकुमार से आसन ग्रहण करने को कहा। तत्पश्चात् दासियों को आज्ञा दी कि वे पान तथा पुष्प अर्पण कर उनका स्वागत करें।

अवन्तिसुन्दरी के शिष्टाचार ने राजकुमार के प्रेम को द्विगुणित कर दिया। वह हृदय में विचारने लगा—मेरे इस अकस्मात् प्रेम-बन्धन का अवश्य ही कोई कारण है कि उस

जन्म में मेरी अर्धाङ्गिनी रही हो, और किसी के शाप के कारण मेरा इससे वियोग हो गया हो, क्योंकि इसने देखते ही मुझे पहचान लिया। अब कौन-सा उपाय करूँ कि यह मुझसे प्रेम करने लगे।

राजकुमार इसी विचार में तल्लीन था कि इतने में एक हंस उड़कर उसके निकट आ बैठा। हंस की प्रेम-पूर्ण दृष्टि देखकर अवन्ति सुन्दरी ने अपनी सहेली से उसे पकड़ने के लिए कहा। राजकुमारी की बात सुनकर राजवाहन ने सोचा इससे अधिक सुन्दर अवसर कब प्राप्त होगा कि वह इस सुन्दरी से वार्त्तालाप कर सके; अतएव वह तुरन्त बोल उठा—"हे राजकुमारी! मैं तुमको हंस के बन्धन तथा उसके शाप की एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूँ, तनिक ध्यान देकर सुनो—

"प्राचीन काल में शम्ब नाम का एक राजा था। एक दिन वह अपनी पत्नी के साथ टहलते हुए एक सरोवर के निकट आया, तो उसने देखा कि एक हंस निद्रित अवस्था में पड़ा है। उसने उस हंस को पकड़ा और उसका पैर बाँध कर उसे उसी अवस्था में छोड़ दिया। हंस को चुपचाप बैठा देखकर रानी बोली कि देखो तो, यह हंस बिल्कुल मुनियों की भाँति शान्त बैठा है। थोड़ी देर बाद जब हंस उठा, तो राजा तथा रानी दोनों हँसने लगे। उनको हँसता देखकर हंस क्रोधित होकर बोला—देख? मैं वास्तव में मुनि हूँ और हंस की योनि ग्रहण करके ईश्वर की आराधना में तल्लीन था, तूने मुझे पकड़ कर तथा बन्दी करके मेरी तपस्या भंग की है; अतएव मैं तुझे शाप देता हूँ कि जा तू सर्वदा स्त्री-वियोग से विकल रहेगा।"

मुनि के शाप से राजा विह्वल हो उठा और अपनी अज्ञा-

नता को स्वीकार करके क्षमा चाही। मुनि ने उसकी यह दशा देखकर कहा "कि शाप तो मिथ्या न होगा; परन्तु ध्यान रख कि तुझे इस जन्म में उसके वशीभूत न होना पड़ेगा, बल्कि दूसरे जन्म में इसी पत्नी से फिर तेरा स्वयंवर होगा और उस समय दो मास तक इससे पृथक रहकर स्त्री-वियोग का दुःख भोगना पड़ेगा। साथ ही यह भी बताए देता हूँ कि उस जन्म में तुम एक दूसरे को सहज ही पहचान सकोगे, अतएव हे राजकुमारी! तुम इस हंस को वन्दी मत करो।" राजवाहन की इस कथा से राजकुमारी को अपने पूर्व जन्म का ज्ञान हो गया।

इस घटना के क्षणिक काल पश्चात् रामकुमारी की माता भी उस फुलवाड़ी में आईं। रानी को आते देखकर बालचन्द्रिका ने राजवाहन को आड़ में हो जाने का संकेत किया। अवन्ति सुन्दरी को अपनी सहेली के साथ क्रीड़ा करते देखकर रानी वहीं से लौट गई। माता को जाते देखकर अवन्ति सुन्दरी भी उनके साथ होली; परन्तु अपनी चतुराई से राजवाहन से कहती गई—"हे राजहंस! इस समय मैं अपनी माता के साथ राजभवन जा रही हूँ, विवश हूँ; परन्तु ध्यान रहे कि तू मुझे कदापि न भूलना और यह न सोचना कि मैं तुझे भूल गई। मेरा हृदय तेरे प्रति जैसा पूर्व में था, वैसा अब भी है।"

राजवाहन से बिछुड़ कर अवन्ति सुन्दरी अपने राजमहल में पहुँची, और कुछ काल तक जब राजवाहन का दर्शन न मिला, तो वह अस्वस्थ-सी रहने लगी। उसकी सहेलियों ने उसके नीरोग होने के अनेक उपाय किये; परन्तु सब निष्फल हुए। अन्त में अवन्ति सुन्दरी ने उनसे कहा कि राजवाहन के अतिरिक्त और कोई उसकी चिकित्सा नहीं कर सकता।

अवन्ति सुन्दरी का पत्र लेकर बालचन्द्रिका राजवाहन के पास गई। वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि राजवाहन भी उसी रोग से पीड़ित है। इधर राजवाहन ने जो बालचन्द्रिका को देखा, तो विस्मित होकर बैठा और बोला—"बालचन्द्रिके! इस समय तुमने आकर मुझे फिर जीवन-दान दिया। उसने इसका कुछ उत्तर न देकर अवन्ति सुन्दरी का पत्र उसके हाथ पर रख दिया।"

पत्र पाते ही वह उसे एक ही श्वास में आदि से अन्त तक पढ़ गया। तदुपरान्त बालचन्द्रिका को सम्बोधन करके बोला—"तुम मेरी प्रेयसी की विश्वासपात्री सखी हो इसलिए मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ कि उसी दिन से मेरी अवस्था 'बिना जल के मीन' की भाँति हो रही है।" राजवाहन की बात सुनकर बालचन्द्रिका कहने लगी—"हे राजकुमार! ठीक यही अवस्था अवन्ति सुन्दरी की भी है। यदि दो-चार दिन में उसको आपका दर्शन न मिलेगा, तो अवश्य वह अपना प्राण त्याग कर देगी।" राजवाहन अपनी प्रेयसी की यह अवस्था सुनकर बड़ा दुखी हुआ और बालचन्द्रिका से कहा—"तुम जाकर सब प्रकार से उसे धीरज देना, मैं कल य. परसों आकर उससे मिलूँगा।" उसने यह सुनकर राजवाहन से विदा माँगी और राज-भवन को चल दी।

अवन्ति सुन्दरी की शोचनीय अवस्था का समाचार पाकर राजवाहन दूसरे ही दिन अपने मित्र पुष्पोद्भव के साथ उसी फुलवाड़ी में गया। वहाँ पहुँचकर देखा कि एक ब्राह्मण उसकी ओर चला आ रहा है। राजवाहन ने उसका परिचय तथा उसके आने का अभिप्राय जानना चाहा। उसने अपने को इन्द्रजाल के खेल का प्रदर्शक बताकर राजवाहन से उसकी

क्षीण दशा का कारण पूछा। राजकुमार ने जब यह देखा कि इस मनुष्य के द्वारा उसकी इच्छाओं की पूर्त्ति हो सकती है, तो उसने अपनी तथा अवन्ति सुन्दरी की प्रेम-कथा उससे कह सुनाई।

विद्येश्वर (प्रदर्शक) ने मुसकराते हुए कहा—"अब तुम निश्चिन्त रहो, ईश्वर तुम्हारा सब क्लेश दूर करेगा, परन्तु यदि तुम मेरी इच्छानुसार कार्य करोगे, तो मैं तुम्हारा और अवन्ति सुन्दरी का विवाह राजा तथा उसके मंत्री के सम्मुख करा दूँगा।" राजवाहन उसकी आज्ञा मानने के लिए तैयार हो गया और उसके कथनानुसार कुछ आवश्यक बातें बाल-चन्द्रिका द्वारा अवन्ति सुन्दरी को भी कहला भेजीं।

इस कार्य से निवृत्त होकर विद्येश्वर ने अपने आगमन की सूचना राजा को दी। राजा ने उसे दूसरे दिन बुलाया। उसने दरबार में जाते ही राजा को इन्द्रजाल के अनेक खेल दिखाये। जब उसे यह ज्ञात हो गया कि राजा उसके खेल से सन्तुष्ट हैं, तब उसने कहा कि यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं राज-विवाह का भी एक खेल, आपको दिखाऊँ। राजा ने तुरन्त आज्ञा दे दी और उसने अपने इस नाटक का प्रधान पात्र राजवाहन को बनाया और अवन्तिसुन्दरी को जो कि छिपकर स्वाँगवालों में मिल गई थी, स्वयंवरा बनाया और इसी प्रकार उसने दोनों का विवाह राजा-रानी के सम्मुख कर दिया। विवाह के पश्चात् दोनों सुख-पूर्वक रहने लगे और राजा तथा शेष दर्शक अब तक इसी अंधकार में पड़े थे कि यह विवाह केवल विद्येश्वर के इन्द्रजाल का नाटक है।

(संक्षिप्त दशकुमारचरित से)

नवीन

व्रत-भंग

"तो, तुम न मानोगे ?"

"नहीं, अब हम लोगों के बीच इतनी बड़ी खाई है, जो कदापि नहीं पट सकती।"

"इतने दिनों का स्नेह ?"

"उँह ! कुछ भी नहीं। उस दिन की बात आजीवन भुलाई नहीं जा सकती नन्दन ! अब मेरे लिए तुम्हारा और तुम्हारे लिए मेरा अस्तित्व नहीं। वह अतीत के स्मरण, स्वप्न हैं, समझे ?"

"यदि न्याय नहीं कर सकते तो दया करो मित्र ! हम लोग गुरुकुल में................"

"हाँ—हाँ, मैं जानता हूँ, तुम मुझे दरिद्र युवक समझकर मेरे ऊपर कृपा रखते थे, किन्तु उसमें कितना तीक्ष्ण अपमान था, उसका मुझे अब अनुभव हुआ।"

"उस ब्रह्म-वेला में जब उषा का अरुण आलोक भागीरथी की लहरों के साथ तरल होता रहता, हम लोग कितने अनुराग से स्नान करने जाते थे। सच कहना, क्या वैसी मधुरिमा हम लोगों के स्वच्छ हृदयों में न थी ?"

"रही होगी—पर अब उस मर्मघाती अपमान के बाद ! मैं खड़ा रह गया, तुम स्वर्ण रथ पर चढ़कर चले गये; एक बार भी नहीं पूछा। तुम कदाचित जानते होगे नन्दन कि कंगाल के मन में प्रलोभनों के प्रति कितना विद्वेष है ? क्योंकि वह उससे सदैव छल करता है—ठुकराता है। मैं अपनी

उसी बात को दुहराता हूँ कि हम लोगों का अब उस रूप में कोई अस्तित्व नहीं।"

"वही सही कपिञ्जल ! हम लोगों का पूर्व अस्तित्व कुछ नहीं, तो क्या हम लोग वैसे ही निर्मल होकर एक नवीन मैत्री के लिए हाथ नहीं बढ़ा सकते ? मैं आज प्रार्थी हूँ।" "मैं उस प्रार्थना की उपेक्षा करता हूँ। तुम्हारे पास ऐश्वर्य्य का दर्प है, तो मेरी अकिञ्चनता कहीं उससे अधिक गर्व रखती है।"

"तुम बहुत कटु हो इस समय। अच्छा फिर कभी........"

"न अभी न फिर कभी। मैं दरिद्रता को भी दिखला दूंगा कि मैं क्या हूँ। इस पाखण्ड-संसार में भूखा रहूँगा, परन्तु किसी के सामने सिर न झुकाऊँगा। हो सकेगा तो संसार को वाध्य करूँगा। हो सकेगा, तो संसार को वाध्य करूँगा झुकने के लिए।"

कपिञ्जल चला गया। नन्दन हतबुद्धि होकर लौट आया, उस रात को उसे नींद न आई।

उक्त घटना को बरसों बीत गये। पाटलीपुत्र के धन कुबेर कलश का कुमार नन्दन धीरे-धीरे उस घटना को भूल चला। ऐश्वर्य्य का मदिरविलास किसे स्थिर रहने देता है! उसके यौवन ने संसार में बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर पदार्पण किया था। नन्दन तब भी मित्र से वंचित होकर जीवन को अधिक चतुर न बना सका।

× × × ×

"राधा तू भी कैसी पगली है ? तूने कलश की पुत्र-वधू बनने का निश्चय किया है आश्चर्य्य !"

"महादेवी! गुरुजनों की आज्ञा है तब उसे तो हाँ मानना ही पड़ेगा।"

"मैं रोक सकती हूँ। वह मूर्ख नन्दन! कितना असंगत चुनाव है! राधा, मुझे दया आती है।"

"किसी अन्य प्रकार से गुरुजनों की इच्छा को टाल देना यह मेरी धारणा के प्रतिकूल है, महादेवी! नन्दन की मूर्खता सरलता का सत्य रूप है। मुझे वह अरुचिकर नहीं। मैं उस निर्मल हृदय की देख-रेख कर सकूँ, तो यह मेरे मनोरंजन का ही विषय होगा।"

मगध की महादेवी ने हँसी से कुमारी के इस साहस का अभिनन्दन करते हुए—"तब तेरी जैसी इच्छा, तू स्वयं भोगेगी।"

माधवी कुञ्ज से वह विरक्त होकर उठ गई। उन्हें राधा पर कन्या के समान ही स्नेह था।

दिन स्थिर हो चुका था। स्वयं मगध-नरेश की उपस्थिति में महाश्रेष्ठ धनञ्जय की कन्या का ब्याह कलश के पुत्र से हो गया, अद्भुत वह समारोह था। रत्नों के आभूषण तथा स्वर्ण-पात्रों के अतिरिक्त मगध-सम्राट ने राधा की प्रिय वस्तु अमूल्य मणि-निर्मित दीपाधार भी दहेज में दे दिया। उस उत्सव की बड़ाई, पान, भोजन आमोद-प्रमोद का विभवशाली चारु चयन कुसुमपुर के नागरिकों को बहुत दिन तक गल्प करने का एक प्रधान उपकरण था।

राधा कलश की पुत्र-वधू हुई।

× × × ×

राधा के नवीन उपवन के सौध-मन्दिर में अगरु, कस्तूर

और केशर की चहल-पहल, पुष्प-मालाओं का दोनों सन्ध्या में नवीन आयोजन और दीपावली में, वीणा, वंशी और मृदंग की स्निग्ध गम्भीर ध्वनि बिखरती रहती। नन्दन अपने सुकोमल आसन पर लेटा हुआ राधा का अनिन्द्य सौन्दर्य एकटक चुपचाप देखा करता। उस सुसज्जित प्रकोष्ठ में मणि-निर्मित दीपाधार की यन्त्र-मयी नर्तकी अपने नूपुरों की झंकार से नन्दन और राधा के लिए एक क्रीड़ा और कौतूहल का सृजन करती रहती। नन्दन कभी राधा के खिसकते हुए उत्तरीय को सँभाल देता। राधा हँसकर कहती—

"बड़ा कष्ट हुआ।"

नन्दन कहता—"देखो, तुम अपने प्रसाधन ही में पसीने-पसीने हो जाती हो, तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है।"

राधा गर्व से मुस्करा देती। कितना सुहाग था, उसका अपने सरल पति पर और कितना अभिमान था अपने विश्वास पर! एक सुखमय स्वप्न चल रहा था।

× × × ×

कलश, धन का उपासक सेठ अपनी विभूति के लिए सदैव सशंक रहता। उसे राजकीय संरक्षण तो था ही दैवी रक्षा से भी अपने को सम्पन्न रखना चाहता था। इस कारण उसे एक नंगे साधु पर अत्यन्त भक्ति थी, जो कुछ ही दिनों से उस नगर के उपकण्ठ में आकर रहने लगा था।

"उसने एक दिन कहा—सब लोग दर्शन करने चलेंगे।"

उपहार के थाल प्रस्तुत होने लगे। दिव्य रथों पर बैठकर सब साधु-दर्शन के लिए चले। वह भागीरथी-तट का एक कानन था, जहाँ कलश का बनवाया हुआ कुटीर था।

सब लोग अनुचरों के साथ रथ छोड़कर भक्तिपूर्ण हृदय

से साधु के समीप पहुँचे; परन्तु राधा ने जब दूर ही से देखा कि वह साधु नग्न है, तो वह रथ की ओर लौट पड़ी। कलश ने उसे बुलाया; पर राधा न गई। नन्दन कभी राधा को देखता और कभी अपने पिता को। साधु खीलों के समान फूट पड़ा। दाँत किट-किटा कर उसने कहा—"यह तुम्हारी पुत्र-वधू कुलक्षणा है कलश! तुम इसे हटा दो, नहीं तो तुम्हारा नाश निश्चित है। नन्दन दाँतों तले जीभ दबाकर धीरे से बोला—अरे! यह कपिंजल········!"

अनागत भविष्य के लिए भयभीत कलश क्षुब्ध हो उठा। वह साधु की पूजा करके लौट आया। राधा अपने नवीन उपवन में उतरी।

कलश ने पूछा—"तुमने महापुरुष से क्यों इतना दुर्विनीत व्यवहार किया?

"नहीं पिताजी! वह स्वयं दुर्विनीत है। जो स्त्रियों को आते देखकर भी साधारण शिष्टाचार का पालन नहीं कर सकता, वह धार्मिक महात्मा तो कदापि नहीं!"

"क्या कह रही है, मूर्ख वे एक सिद्ध पुरुष हैं।"

"सिद्धि यदि इतनी अधम है, धर्म यदि इतना निर्लज्ज है, तो वह स्त्रियों के योग्य नहीं पिताजी! धर्म के रूप में कहीं आप भय की उपासना तो नहीं करा रहे हैं?"

"तू सचमुच कुलक्षणा है!"

"इसे तो अन्तर्यामी भगवान् ही जान सकते हैं। मनुष्य इसके लिए अत्यन्त क्षुद्र है। पिताजी आप·······"

उसे रोककर अत्यन्त क्रोध से कलश ने कहा—"तुझे इस

और केशर की चहल-मुहल, पुष्प-मालाओं का दोनों सन्ध्या में नवीन आयोजन और दीपावली में, वीणा, वंशी और मृदंग की स्निग्ध गम्भीर ध्वनि बिखरती रहती। नन्दन अपने सुकोमल आसन पर लेटा हुआ राधा का अनिन्द्य सौन्दर्य्य एकटक चुपचाप देखा करता। उस सुसज्जित प्रकोष्ठ में मणि-निर्मित दीपाधार की यन्त्र-मयी नर्तकी अपने नूपुरों की झंकार से नन्दन और राधा के लिए एक क्रीड़ा और कौतूहल का सृजन करती रहती। नन्दन कभी राधा के खिसकते हुए उत्तरीय को सँभाल देता। राधा हँसकर कहती—

"बड़ा कष्ट हुआ।"

नन्दन कहता—"देखो, तुम अपने प्रसाधन ही में पसीने-पसीने हो जाती हो, तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है।"

राधा गर्व से मुस्करा देती। कितना सुहाग था, उसका अपने सरल पति पर और कितना अभिमान था अपने विश्वास पर! एक सुखमय स्वप्न चल रहा था।

× × × ×

कलश, धन का उपासक सेठ अपनी विभूति के लिए सदैव सशंक रहता। उसे राजकीय संरक्षण तो था ही दैवी रक्षा से भी अपने को सम्पन्न रखना चाहता था। इस कारण उसे एक नंगे साधु पर अत्यन्त भक्ति थी, जो कुछ ही दिनों से उस नगर के उपकण्ठ में आकर रहने लगा था।

"उसने एक दिन कहा—सब लोग दर्शन करने चलेंगे।"

उपहार के थाल प्रस्तुत होने लगे। दिव्य रथों पर बैठकर सब साधु-दर्शन के लिए चले। वह भागीरथी-तट का एक कानन था, जहाँ कलश का बनवाया हुआ कुटीर था।

सब लोग अनुचरों के साथ रथ छोड़कर भक्तिपूर्ण हृदय

से साधु के समीप पहुँचे; परन्तु राधा ने जब दूर ही से देखा कि वह साधु नग्न है, तो वह रथ की ओर लौट पड़ी। कलश ने उसे बुलाया; पर राधा न गई। नन्दन कभी राधा को देखता और कभी अपने पिता को। साधु खीलों के समान फूट पड़ा। दाँत किट-किटा कर उसने कहा—"यह तुम्हारी पुत्र-वधू कुलक्षणा है कलश! तुम इसे हटा दो, नहीं तो तुम्हारा नाश निश्चित है। नन्दन दाँतों तले जीभ दबाकर धीरे से बोला—अरे! यह कपिंजल.......!"

अनागत भविष्य के लिए भयभीत कलश क्षुब्ध हो उठा। वह साधु की पूजा करके लौट आया। राधा अपने नवीन उपवन में उतरी।

कलश ने पूछा—"तुमने महापुरुष से क्यों इतना दुर्विनीत व्यवहार किया?

"नहीं पिताजी! वह स्वयं दुर्विनीत है। जो स्त्रियों को आते देखकर भी साधारण शिष्टाचार का पालन नहीं कर सकता, वह धार्मिक महात्मा तो कदापि नहीं!"

"क्या कह रही है, मूर्ख वे एक सिद्ध पुरुष हैं।"

"सिद्धि यदि इतनी अधम है, धर्म यदि इतना निर्लज्ज है, तो वह स्त्रियों के योग्य नहीं पिताजी! धर्म के रूप में कहीं आप भय की उपासना तो नहीं कर रहे हैं?"

"तू सचमुच कुलक्षणा है!"

"इसे तो अन्तर्यामी भगवान् ही जान सकते हैं। मनुष्य इसके लिए अत्यन्त क्षुद्र है। पिताजी आप........"

उसे रोककर अत्यन्त क्रोध से कलश ने कहा—"तुझे इस

घर में रखना अलक्ष्मी को बुलाना है। जा मेरे भवन से निकल जा।"

नन्दन सुन रहा था। काठ के पुतले के समान! वह इस विचार का अन्त हो जाना तो चाहता था; पर क्या करे, यह उसकी समझ में न आया। राधा ने देखा, उसका पति कुछ नहीं बोलता तो उसने गर्व से सिर उठाकर कहा—"मैं धन-कुवेर की क्रीत दासी नहीं हूँ। मेरे गृहिणीत्व का अधिकार केवल मेरा पदस्खलन ही छीन सकता है। मुझे विश्वास है, मैं अपने आचरण से अब तक इस पद की स्वामिनी हूँ। कोई भी मुझे इससे वंचित नहीं कर सकता।"

आश्चर्य से देखा नन्दन ने और हतबुद्धि होकर सुना कलश ने। दोनों उपवन के बाहर चले गये।

भीतर बैठी हुई राधा ने यह सब देखा।

× × × ×

नन्दन ने पिता का अनुकरण किया। वह धीरे-धीरे राधा को भूल चला; परन्तु नये ब्याह का नाम लेते ही चौंक पड़ता। उसके मन में धन की ओर से वितृष्णा जगी। ऐश्वर्य का यान्त्रिक शासन जीवन को नीरस बनाने लगा। उसके मन की अतृप्ति, विद्रोह करने के लिए सुविधा खोजने लगी।

कलश ने उसके मनोविनोद के लिए नया उपवन बनवाया। नन्दन अपनी स्मृतियों का लीला-निकेतन छोड़कर वहीं रहने लगा।

× × × ×

राधा के आभूषण बिकते थे और उस सेठ के द्वार की अतिथि-सेवा वैसी ही हो रही। मुक्त द्वार का अपरिमित

व्यय और आभूषणों के विक्रय की आय—कब तक यह युद्ध चले ? अब राधा के पास बच गया वही मणिनिर्मित दीपाधार, जिसे महादेवी ने उसकी क्रीड़ा के लिए बनवाया था।

'थोड़ा-सा अन्न अतिथियों के लिए बचा था। राधा दो दिन से उपवास कर रही थी। दासी ने कहा—स्वामिनी ! यह कैसे हो सकता है कि आपके सेवक, विना आपके भोजन किये अन्न ग्रहण करें ?

राधा ने कहा—"तो, आज यह मणिदीप बिकेगा।" दासी उसे ले आई। वह यन्त्र से बनी हुई रत्न-जटित नर्तकी नाच उठी। उसके नूपुर की झंकार उस दरिद्र भवन में गूँजने लगी। राधा हँसी। उसने कहा—"मनुष्य-जीवन में इतनी भी नियमानुकूलता यदि होती ?"

स्नेह से चूमकर उसे बेचने के लिए अनुचर को दे दिया। पुण्य में पहुँचते ही दीपाधार बड़े-बड़े रत्न-वणिकों की दृष्टि का एक कुतूहल बन गया। उसके चूड़ामणि का दिव्य आलोक सभी की आँखों में चका-चौंध उत्पन्न कर देता था। मूल्य की बोली बढ़ने लगी। कलश भी पहुँचा। उसने पूछा—यह किसका है। अनुचर ने उत्तर दिया—मेरी स्वामिनी सौभाग्यवती श्रीमती राधादेवी का।

लोभी कलश ने डाँटकर कहा—मेरे घर की वस्तु इस तरह चुराकर तुम लोग बेचने आओगे, तो बन्दी-गृह में पड़ोगे, भागो।

अमूल्य दीपाधार से वंचित सब लौट गये। कलश उसे अपने घर उठवा ले गया।

राधा ने सब सुना—वह कुछ न बोली।

× × × ×

गंगा और शोण में एक साथ ही बाढ़ आई। गाँव-के-गाँव बहने लगे। भीषण हाहाकार मचा। कहाँ ग्रामीणों की असहाय दशा और कहाँ जल की उद्दण्ड बाढ़! कच्चे झोंपड़े उस महाजलव्याल की फूँक से तितर-बितर होने लगे। वृक्षों पर जिसे आश्रय मिला; वही बच सका। नन्दन के हृदय ने तीसरा धक्का खाया। नन्दन का सत्साहस उत्साहित हुआ। वह अपनी पूरी शक्ति से नावों की सेना बनाकर जल-प्लावन में डट गया और कलश अपने सात खण्ड के प्रासाद में बैठा यह दृश्य देखता रहा।

रात नावों पर बीतती है और बाँसों के छोटे-छोटे बेड़ों पर दिन। नन्दन के लिए धूप, वर्षा शीत कुछ नहीं। अपनी धुन में वह लगा हुआ है। बाढ़-पीड़ितों का झुण्ड सेठ के प्रासाद में हर नाव से उतरने लगा। कलश क्रोध के मारे बिलबिला उठा। उसने आज्ञा दी कि बाढ़-पीड़ित यदि स्वयं नन्दन भी हो; तो वह प्रासाद में न आने पावे। घटा घिरी थी, जल बरसता था। कलश अपनी ऊँची अटारी पर बैठा मणि-निर्मित दीपाधार का नृत्य देख रहा था।

× × × ×

नन्दन भी उसी नाव पर था, जिस पर चार दुर्बल स्त्रियाँ, तीन शीत से ठिठुरे हुए बच्चे और पाँच जीर्ण पंजरवाले वृद्ध थे। उस समय नाव द्वार पर जा लगी। सेठ का प्रासाद गंगा-तट की एक ऊँची चट्टान पर था। वह छोटा-सा दुर्ग था। जल अभी द्वार तक ही पहुँच सका था। प्रहरियों ने नाव को देखते ही रोका—पीड़ितों को इसमें स्थान नहीं।

नन्दन ने पूछा—"क्यों?"

"महाश्रेष्ठ कलश की आज्ञा।"

नन्दन ने एक बार क्रोध से उस प्रासाद की ओर देखा और माँझी को नाव लौटाने की आज्ञा दी। माँझी ने पूछा—कहाँ ले चलें ? नन्दन कुछ न बोला। नाव उस बाढ़ में चक्कर खाने लगी। सहसा दूर उसे जल-मग्न वृक्षों की चोटियों और पेड़ों के बीच में एक गृह का ऊपरी अंक दिखाई पड़ा। नन्दन ने संकेत किया। माँझी उसी ओर नाव खेने लगा।

× × × ×

गृह के नीचे अंश में जल भर गया था। थोड़ा-सा अन्न और ईंधन ऊपर के भाग में बचा था। राधा उस जल में घिरी हुई अचल थी। छत के मुँडेर पर बैठी वह जलमयी प्रकृति में डूबते हुई सूर्य की अन्तिम किरणों को ध्यान से देख रही थी ! दासी ने कहा—"स्वामिनी ! वह दीपाधार भी गया, अब तो हम लोगों के लिए बहुत थोड़ा अन्न घर में बच रहा है।"

"देखती नहीं यह प्रलय-सी बाढ़ ! कितने मर मिटे होंगे। तुम तो पक्की छत पर बैठी अभी यह दृश्य देख रही हो। आज से मैंने अपना अंश छोड़ दिया। तुम लोग जब तक जी सको जीना।"

सहसा नीचे झाँक कर राधा ने देखा, एक नाव उसके वातायन से टकरा रही है, और एक युवक उसे वातायन के साथ दृढ़ता से बाँध रहा है।

राधा ने पूछा—"कौन है ?"

नीचे सिर किये नन्दन ने कहा—"बाढ़-पीड़ित कुछ प्राणियों को क्या आश्रय मिलेगा ? अब जल का क्रोध उतर चला है। केवल दो दिन के लिए इतने मरनेवालों को आश्रय चाहिए।"

"ठहरिए, सीढ़ी लटकाई जाती है।"

राधा और दासी तथा अनुचर ने मिलकर सीढ़ी लगाई नन्दन विवर्ण मुख एक-एक को पीठ पर लादकर ऊपर पहुँचा लगा। जब सब ऊपर आ गये तो, राधा ने आकर कहा— और तो कुछ नहीं है, केवल द्विदलों का जूस इन लोगों लिए है, ले आऊँ ?

नन्दन ने सिर उठाकर देखा, राधा! वह बोल उठा— "राधा! तुम यहीं हो ?"

"हाँ स्वामी, मैं अपने घर में हूँ। गृहिणी का कर्त्तव्य कर रही हूँ।"

"पर मैं गृहस्थ का कर्त्तव्य न पालन कर सका, राधा पहले मुझे क्षमा करो।"

"स्वामी, यह अपराध मुझ से न हो सकेगा। उठिए, आ आपकी कर्मण्यता से, मेरा ललाट उज्ज्वल हो रहा है। इतन साहस कहाँ छिपा था नाथ!"

दोनों प्रसन्न होकर कर्त्तव्य में लगे। यथा-सम्भव दुखियों की सेवा होने लगी।

एक प्रहर के बाद नन्दन ने कहा—"मुझे भ्रम हो रहा कि कोई यहाँ पास ही विपन्न है? राधा अभी रात अधि नहीं हुई है। मैं एक बार नाव लेकर जाऊँ?"

राधा ने कहा—"मैं भी चलूँ?"

नन्दन ने कहा—"गृहिणी का काम करो राधा! कर्त्तव्य कठोर होता है, भाव प्रधान नहीं।"

नन्दन एक माँझी को लेकर चला गया और राधा दीपक जलाकर मुँडेरे पर बैठी थी। उसकी दासी और दास पीड़ि

की सेवा में लगे थे। बादल खुल गये थे। असंख्य नक्षत्र झल-मलाकर निकल आये, मेघों के बन्दीगृह से जैसे छुट्टी मिली हो ? चन्द्रमा भी धीरे-धीरे उस त्रस्त प्रदेश को भयभीत होकर देख रहा था।

एक घण्टे में नन्दन का शब्द सुनाई पड़ा—"सीढ़ी।।"

राधा दीपक दिखला रही थी और सीढ़ी के सहारे नन्दन ऊपर एक भारी बोझ लेकर चढ़ रहा था।

छत पर आकर उसने कहा—"एक वस्त्र दो राधा।" राधा ने एक उत्तरीय दिया। वह मुमुर्षु व्यक्ति नग्न था। उसे ढक-कर नन्दन ने थोड़ा सेंक दिया, गर्मी भीतर पहुँचते ही वह हिलने-डोलने लगा। नीचे से माँझी ने कहा—"जल बड़े वेग से हट रहा है, नाव ढीली न करूँगा तो लटक जायगी।"

नन्दन ने कहा—"तुम्हारे लिए भोजन लटकाता हूँ ले लो।" काल-रात्रि बीत गई। नन्दन ने प्रभात में आँखें खोल कर देखा कि सब सो रहे हैं और राधा उसके पास बैठी सिर सहला रही है।

इतने में पीछे से लाया हुआ मनुष्य उठा। अपने को अपरिचित स्थान में देख कर वह चिल्ला उठा—"मुझे वस्त्र किसने पहनाया, मेरा व्रत किसने भंग किया ?"

नन्दन ने हँसकर कहा—"कपिञ्जल ? यह राधा का गृह है, तुम्हें उसकी आज्ञानुसार यहाँ रहना होगा। छोड़ो पागल-पन ! चलो, बहुत-से प्राणी हम लोगों की सहायता के अधि-कारी हैं।" कपिञ्जल ने कहा—"सो कैसे हो सकता है ? तुम्हारा-हमारा संग ! असम्भव है।"

"मुझे दण्ड देने के लिए ही तो तुमने यह स्वाँग रचा था। राधा तो उसी दिन से निर्वासित थी और कल से मुझे भी अपने घर में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं। कपिञ्जल ! आज तो हम और तुम दोनों बराबर हैं और इतने अधमरों के प्राणों का दायित्व भी हमी लोगों पर है। यह व्रतभंग नहीं, व्रत का आरम्भ है। चलो, इस दरिद्र कुटुम्ब के लिए अन्न जुटाना होगा।"

कपिञ्जल आज्ञाकारी बालक की भाँति सिर झुकाये उठ खड़ा हुआ।

(जयशंकर प्रसाद)

ताई

"ताऊजी, हमें लेलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे ?"—कहता हुआ एक पञ्चवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाहें फैलाकर कहा—"हाँ बेटा ला देंगे।"

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी का ?"

बालक बोला—"उसमें बैठकर बड़ी दूर जायँगे। हम भी जायँगे, चुन्नी को भी ले जायँगे। बाबूजी को नहीं ले जायँगे। हमें रेलगाड़ी नहीं ला देते। ताऊजी तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जायँगे।

बाबू—"और किसे ले जायगा ?

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बछ, और किसी को नहीं ले जायँगे।"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धाङ्गिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं ले जायगा ?"

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताईजी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का यह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जायँगे।"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊ को ही ले जा! मेरे ऊपर दया रख!"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जायगा?"

बालक—"ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं करतीं।"

बाबूजी—"जो प्यार करें तो ले जायगा?"

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—"क्यों रे बोलता नहीं? ताई प्यार करें, तो रेल पर बिठा कर ले जायगा।"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया; परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी के पास ले जाकर उनसे बोले—"लो, इसे प्यार करलो, यह तुम्हें भी ले जायगा।" परतु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वे सुनकर बोलीं—"तुम्हीं रेल पर बैठ कर जाओ, मुझे नहीं जाना है।"

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—"प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नहीं बिठावेगा। —क्यों रे मनोहर?"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे

गिर पड़ा। शरीर में चोट नहीं लगी; पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुमकार-पुचकार कर चुप किया और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया! जो उसके चोट लग जाती तो?"

रामेश्वरी मुँह लटकाकर बोलीं—"लग जाती! तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे। आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे, और अब आप ही ऐसी बातें करते हैं।"

बाबू साहब कुढ़कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं?"

रामेश्वरी—"और नहीं किसे कहते हैं? तुम्हें तो अपने और किसी का दुख-सुख सूझता नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है तुम्हें इन बातों की कुछ परवाह ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।"

बाबूजी—"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा जी हो, प्रसन्न हो जाता है; मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है।"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है, मगर वैसा बच्चा भी तो हो! पराये धन से कहीं घर भरता है।"

बाबू साहब कुछ चुप रह कर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे ?"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं—"बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग्य ही फूटे हैं। नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं; पर तुम्हें इन बातों से क्या काम ? रात-दिन भाई भतीजों में मगन रहते हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—"पूजा पाठ व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा पाठ से कभी नहीं प्राप्त हो सकती। मेरा यह अटल विश्वास है।"

श्रीमती जी कुछ रुआसे स्वर में बोलीं—"इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रक्खा है! ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायँ; तो काम कैसे चले ? सब विश्वास पर ही बैठे रहें, तो आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे ?"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं; अतएव वे स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

२

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन-देन भी है, इनके एक छोटा भाई है।

उसका नाम है—कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है, और छोटे भाई कृष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान हैं। कृष्णदास के दो सन्तानें हैं एक पुत्र—वही, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं, ऐसा स्नेह कि उनके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान-हीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं, कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तान-हीनता का बड़ा दुःख है। वे दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रक्खे, किसी चिंता में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू के पास से उठकर अपनी माँ के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—"आज तुम ने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था, कि मुझे अब तक उसका दुःख है, कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी बोलीं—"तुम्हीं ने ऐसा बना रक्खा है। उस

किन उस पण्डित ने कहा था कि दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है, और उपाय करने से सन्तान हो सकती है, उसने उपाय भी बताए थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना-न-होना तो भगवान् के आधीन है।"

बाबू साहब हँसकर बोले—"तुम्हारी जैसी सीधी स्त्री भी.......क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया भर के झूठे और धूर्त्त हैं! ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनककर बोलीं—तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पंडित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं, शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं। अँग्रेजी क्या पढ़ी अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादों के जमाने से चली आई हैं, उन्हें भी झूठा बनाते हैं।

बाबू साहब—"तुम बात तो समझती ही नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। सम्भव है, सच्चा हो; परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते हैं, और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—"हूँ—सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक सच्चे हो!

अच्छा एक बात पूछती हूँ, भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती ?

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो ? परन्तु किया क्या जाय ? जब नहीं है, और न होने की आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ? इसके सिवा, जो बात अपनी सन्तान से होती वही भाई की सन्तान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।"

रामेश्वरी कुछ चिढ़कर बोलीं—"तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ। भला यह बताओ कि हमारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा ?"

बाबू साहब हँसकर बोले—"अरे, तुम भी कहाँ की पोच बातें लाईं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नांम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके ? इसी प्रकार कितने महात्मा हो गये हैं, उन सब का नाम क्या उनकी सन्तान ही की बदौलत चल रहा है ? सच पूछो, तो सन्तान से जितना नाम चलने की आशा रहती है, उतनी नाम डूब जाने की भी सम्भावना रहती है; परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है, जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल

कितने नामी आदमी थे ? उनके सन्तान कहाँ है ? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और न जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है, जिसके पुत्र नहीं होता उसकी मुक्ति नहीं होती ?"

बाबू—"मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम ? यदि मुक्ति होना मान भी लिया जाय तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों को मुक्ति हो ही जाती है ? मुक्ति का क्या ही सहज उपाय है। ये जितने पुत्र वाले हैं, सभी को तो मुक्ति हो ही जाती होगी ?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोलीं—"अब तुम से कौन बक-वाद करे। तुम तो अपने सामने किसी को मानते ही नहीं।"

३

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी-से-भद्दी और काम में न आने वाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो, कितनी ही उप-योगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता; इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आनेवाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है; इसलिए कि वह अपनी चीज है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज से प्रेम करने

लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बना कर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं; परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है; पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लाने वाला कोई नहीं। इसलिए, उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था; परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वे देखती थीं कि उनके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी) के नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी छत पर बैठी हवा खा रही थीं। पास ही उनके देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेलों को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हें-नन्हें मुख, उनकी प्यारी-प्यारी

तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना और लौट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ा हुआ आया, और यह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गईं। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता हैं।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी।" कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद-सी टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भौंहें तन गईं। बच्चों के प्रति फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये, और मुसकराकर बोले—आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं! इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।

रामेश्वरी को पति की यह बात बुरी लगी। उन्हें अपनी कमजोरी पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गई यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसीलिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात में प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग्य की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़कर मन में कहा—"इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायँ पाप कटे! आठों पहर आँखों के सामने रहने से जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी, जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्हीं को मुबारक रहे! निगोड़े आप ही आ-आकर घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना ही पड़ता है। अभी परसों जरा यों-ही ढकेल दिया, उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं; न यों चैन, न त्यों चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न-जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी-खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रङ्ग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर कहने से बल्लियों उछलती है। न-जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है, तो न कहा करूँगा। इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके वषय में निगोड़े-सिगोड़े आप-शब्द निकाले, तो अच्छा न होगा! तुमसे मुझे बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।"

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों-द्वारा निकालने लगी।

जैसे-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरी को पति के कटुवचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण वे पति की नजरों से गिरती जा रही हैं, तब उनके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उन्होंने सोचा—"पराये बच्चों के पीछे ये मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए बच्चे ही सब-कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं! दुनिया मरती जाती है; पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये। न होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घी के चिराग जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर रक्खा है।"

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार

रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग—इत्यादि। कुछ देर के बाद उनके विचार स्वयं कष्ट-दायक प्रतीत होने लगे। तब वे अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए उठकर टहलने लगीं।

वे टहल रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी भृकुटि चढ़ गई, और वे छत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गईं।

सन्ध्या का समय था; आकाश में रङ्ग-बिरङ्गी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतङ्ग कटकर उसकी छत पर गिरे तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक पतंग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया, और उनकी टाँगों में लिपटकर बोला—"ताई हमें पतङ्ग मँगा दो।" रामेश्वरी ने भिड़ककर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण स्वर में कहा—"ताई, पतङ्ग मँगा दो; हम भी उड़ावेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो आज मुझसे बढ़कर

भाग्यवान् स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़ा मेरा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है। जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लें

यह सोचकर वे उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला—"तुम हमें पतङ्ग नहीं मँगवा दोगी, तो ताऊ से कहकर पिटवायेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वे उसे झिड़ककर बोलीं—"जा कह दे अपने ताऊजी से! देखूँ, वे मेरा क्या कर लेंगे!"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया, और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतङ्गों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊजी के दुलार का फल है कि बालिश्त-भर का बालक मुझे धमकाता है। ईश्वर करे, इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतङ्ग कटकर उसी छत की ओर आई, और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहारदीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहाँ पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी इस द्वार से सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर ने पतङ्ग को छज्जे पर जाते देखा। पतङ्ग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास होकर पतङ्ग को देखने लगा। पतङ्ग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर के आँगन में

जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका, और पतङ्ग को आँगन में गिरते देख प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा; परन्तु घूमते समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गई। वह उसे पकड़कर लटक गया, और रामेश्वरी की ओर देख कर चिल्लाया—'ताई !' रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा, उनके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायगा—यही सोचकर वे क्षण के लिए रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—'अरी ताई !' रामेश्वरी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा भी नहीं था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वे ज़ोर से चिल्ला उठतीं, और कहतीं—"देखो-देखो, वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी कहतीं—"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ, मैं चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।" इसी प्रकार के प्रलाप वे किया करतीं। मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह

क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है?"

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है।"

रामेश्वरी ने कहा—"उसे मेरे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गईं। अब वे मनोहर की बहन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं। और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

(विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक)

बड़े भाई साहब

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे; लेकिन केवल तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था, जब मैंने शुरू किया; लेकिन तालीम जैसे महत्व के मामले में वे जल्दबाजी से काम लेना पसन्द न करते थे। इस भवन की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे, जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो तो मकान कैसे पायदार बने!

मैं छोटा था, वे बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल की, वे चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा और जन्म-सिद्ध अधिकार था और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को क़ानूनी समझूँ।

वे स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते। और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुन्दर अक्षरों में नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामंजस्य। मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी—स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयों, दरअसल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घण्टे तक—इसके

बाद आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने बहुत चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ ; लेकिन असफल रहा। और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वे नवीं जमाअत में थे, मैं पाँचवीं में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए 'छोटा मुँह बड़ी बात' थी।

मेरा जी बिल्कुल न लगता था। एक घण्टा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकल कर मैदान में आ जाता और कभी कँकरियाँ उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उड़ाता और कहीं कोई साथी मिल गया, तो पूछना ही क्या। कभी चहारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर सवार उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनन्द उठा रहे हैं; लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का रुद्र-रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता—'कहाँ थे ?' हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में हमेशा पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मेरे मुँह से यह बात क्यों नहीं निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें।

"इस तरह अँग्रेजी पढ़ोगे, तो जिन्दगी-भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ न आयेगा। अँग्रेजी पढ़ना कोई हँसी-खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले, नहीं ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा सभी अँग्रेजी के विद्वान् हो जाते। यहाँ रात-दिन आँखें फोड़नी पड़ती हैं और खून जलाना पड़ता है, तब कहीं यह विद्या आती है। और आती क्या है, हाँ कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े

विद्वान् भी शुद्ध अङ्गरेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूँ, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूँ यह तुम अपनी आँखों से देखते हो; अगर नहीं देखते, तो यह तुम्हारी आँखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है, इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है? रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते हैं। मैं पास नहीं फटकता। हमेशा पढ़ता रहता हूँ। उस पर भी एक-एक दरजे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूँ; फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद में वक्त गँवाकर पास हो जाओगे। मुझे तो दो ही तीन साल लगते हैं, तुम उम्र भर इसी दरजे में पड़े सड़ते रहोगे। अगर तुम्हें इस तरह उम्र गँवानी है; तो बहतर है कि घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डंडा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रुपयों को क्यों बरबाद करते हो?"

मैं यह लताड़ सुन आँसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे। भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगनी बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते, कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोड़ कर मेहनत करने की शक्ति मैं अपने में न पाता था और उस निराशा में जरा देर के लिए मैं सोचने लगता—क्यों न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूँ। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था; लेकिन उतनी मेहनत! मुझे तो चक्कर आता था; लेकिन घण्टे-दो-घण्टे के बाद निराशा के बादल

फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूँगा। चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाये, कोई स्कीम तैयार किये काम कैसे शुरू करूँ। टाइम-टेबिल में खेल-कूद की मद बिल्कुल उड़ जाता। प्रातःकाल उठना, छः बजे मुँह-हाथ धो, नाश्ता कर, पढ़ने बैठ जाना। छः से आठ तक अँगरेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढ़े तीन बजे स्कूल से वापस होकर आध घण्टा आराम, चार से पाँच तक भूगोल, पाँच से छः तक ग्रामर, आध घण्टा होस्टल के सामने ही टहलना, साढ़े छः से साढ़े सात तक अङ्गरेजी कम्पोजीशन फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध-विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हल्के झोंके, फुटबाल की वह उछल-कूद, कबड्डी के वह दाँव-घात, वॉलीबॉल की वह तेजी और फुरती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान लेवा टाइम-टेबिल, वह आँख फोड़ पुस्तकें, किसी की याद न रहती; और फिर भाई साहब को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साए से भागता, उनकी आँखों से दूर रहने की चेष्टा करता, कमरे में इस तरह दबे पाँव आता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर एक नंगी तलवार-सी लटकी मालूम होती। फिर भी

जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बन्धन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियाँ खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता।

२

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गये, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच में केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथों लूँ—आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई। मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूँ; लेकिन वह इतने दुखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हाँ, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्म-सम्मान भी बढ़ा। भाई साहब का वह रौब मुझ पर न रहा, आजादी से खेल-कूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फ़ज़ीहत की, तो साफ कह दूँगा—आपने अपना खून जला कर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दरजे में अव्वल आ गया। ज़बान से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ़ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतङ्क मुझ पर नहीं है। भाई साहब ने इसे भाँप लिया—उनकी सहज बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली डंडे की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साहब ने मानों तलवार खींचली और मुझ पर टूट पड़े—"देखता हूँ, इस साल पास हो गये और दरजे में अव्वल आ गये, तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाईजान, घमण्ड तो बड़ों-बड़ों का नहीं रहा,

तुम्हारी क्या हस्ती है। इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया? या यों ही पढ़ गये? महज इम्तहान पास कर लेना कोई बड़ी चीज नहीं, असल चीज़ है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भू-मण्डल का स्वामी था। ऐसे राजों को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अङ्गरेजों के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है; पर उन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते। संसार में अनेक राष्ट्र अङ्गरेजों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते। बिलकुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था, संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे; मगर उसका अन्त क्या हुआ? घमण्ड ने उसका नाम-निशान तक मटा दिया, कोई उसे एक चुल्लू पानी देने वाला भी न बचा। आदमी और जो चाहे कुकर्म करे; पर अभिमान न करे, इतराए नहीं। अभिमान किया और दीन दुनिया दोनों से गया। शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं। अन्त यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहेरूम ने भी एक बार अहङ्कार किया था। भीख माँग-माँग कर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दरजा पास किया है, और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अन्धे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं लग सकती। कभी-कभी गुल्ली-डंडे में भी अन्धाचोट निशाना लग जाता है। इससे कोई सफल

खिलाड़ी नहीं हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है, जिसका कोई निशाना खाली न जाय। मेरे फेल होने पर मत जाओ। मेरे दरजे में जाओगे, तो दाँतों पसीना आ जायगा, जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे, और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा। बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी ही गुजरे हैं। कौन-सा कांड किस हेनरी के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवाँ लिखा और सब नम्बर गायब! सफाचट! सिफर भी न मिलेगा, सिफर भी! हो किस खयाल में। दरजनों तो जेम्स हुए हैं, दरजनों विलियम, कोड़ियों चार्ल्स। दिमाग चक्कर खाने लगता है। आँधी-रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न सूझते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम्, सोयम चहारम, पंचम लगाते चले गये। मुझ से पूछते तो दस लाख नाम बता देता। और जामेट्री, तो बस खुदा की पनाह! अ, ब, ज की जगह अ, ज, ब, लिख दिया और सारे नम्बर कट गये। कोई निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ, ब, ज और अ, ज, ब में क्या फ़र्क है, और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हो। दाल भात रोटी खाई या भात दाल रोटी खाई, इसमें क्या रखा है; मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह। वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक में लिखा है। चाहते हैं कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें। और इसी रटत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है। और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातों के पढ़ाने से फायदा? इस रेखा पर वह लंब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगना नहीं चौगुना हो जाय, या आधा ही

रहे, मेरी बला से; लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफ़ात याद रखनी पड़ेगी। कह दिया—'समय की पाबन्दी' पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। अब आप कॉपी सामने खोले, कलम हाथ में लिये, उसके नाम को रोइए। कौन नहीं जानता कि समय की पाबन्दी बहुत अच्छी बात है, इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके कारो-बार में उन्नति होती है; लेकिन इस जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें। जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्नों में लिखने की जरूरत ? मैं तो इसे हिमाकत कहता हूँ। यह तो समय की किफायत नहीं; बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूँस दिया जाय। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नहीं, आपको चार पन्ने रँगने पड़ेंगे, चाहे जैसे लिखिए। और पन्ने भी पूरे फुल्स्केप के आकार के। यह छात्रों पर अत्याचार नहीं तो और क्या है ? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है संक्षेप में लिखो। समय की पाबन्दी पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। ठीक ! संक्षेप में तो चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ-दो-सौ पन्ने लिख-वाते। तेज़ भी दौड़िए और धीरे-धीरे भी। है उल्टी बात या नहीं, बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है; लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज भी नहीं। उस पर दावा है कि हम अध्यापक हैं। मेरे दरजे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे में अव्वल आगये हो तो ज़मीन पर पाँव नहीं रखते; इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ; लेकिन

तुमसे बड़ा हूँ; संसार का मुझे तुमसे कहीं ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बाँधिए, नहीं पछताइएगा।"

स्कूल का समय निकट था, ईश्वर जाने यह उपदेश-माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निस्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिये जायँ। भाई साहब ने अपने दरजे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था, उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा; यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों से मेरी अरुचि ज्यों-की-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी था; मगर बहुत कम, बस इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाय और दरजे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरों का-सा जीवन कटने लगा।

३

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मैं फिर पास हुआ और भाई साहब फिर फेल हो गये। मैंने बहुत मेहनत नहीं की; पर न जाने कैसे दरजे में अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणांतक परिश्रम किया था। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गये थे, दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने से पहले। मुद्रा कान्तिहीन हो गई थी; मगर फेल हो गये। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया, तो वे रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने की खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई

साहब को इतना दुःख न होता; लेकिन विधि की बात कौन टाले।

मेरे और भाई साहब के बीच में अब केवल एक दरजे का अन्तर और रह गया है। मेरे मन में एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल हो जायँ तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे; लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बल-पूर्वक निकाल डाला। आखिर वे मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डाँटते हैं। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य; मगर शायद यह उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास होता जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरों से।

अबकी भाई साहब बहुत कुछ नर्म पड़ गये थे। कई बार मुझे डाँटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डाँटने का अधिकार उन्हें नहीं रहा, या रहा, तो बहुत कम। मेरी स्वच्छन्दता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास हो ही जाऊँगा, पढ़ूँ या न पढ़ूँ, मेरी तकदीर बलवान है इसलिए भाई साहब के डर से जो थोड़ा-बहुत पढ़ लिया करता था, वह भी बन्द हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी ही की भेंट होता था; फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। माँझा देना, कन्ने बाँधना, पतंग-टूरनामेंट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ सब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। मैं

भाई को यह सन्देह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरों में कम हो गया है।

एक दिन सन्ध्या-समय, होटल से दूर, मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आँखें आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर जो मन्द गति से झूमता पतन की ओर चला आ रहा था। मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नये संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लग्गे और झाड़दार बाँस लिये उसका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतङ्ग के साथ ही आकाश में उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटरकारें हैं, न ट्राम, न गाड़ियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होंने वहीं मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्र भाव से बोले—"इन बाजारी लौंडों के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमाअत में नहीं हो; बल्कि आठवीं जमाअत में आ गये हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपने पोजीशन का खयाल करना चाहिए। एक जमाना था कि लोग आठवाँ दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडिलचियों को जानता हूँ, जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मैजिस्ट्रेट या सुपरिंटेन्डेंट हैं। कितने ही आठवीं जमाअत वाले हमारे लीडर और समाचार-पत्रों के सम्पादक हैं। बड़े-बड़े विद्वान् उनकी मातहती में काम करते हैं। और तुम उसी आठवें दरजे में आकर बाजारी लौंडों के साथ कनकौए

के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं; लेकिन वह जहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले। तुम अपने दिल में समझते होगे, मैं भाई साहब से महज एक दरजा नीचे हूँ और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद एक साल बाद मुझसे आगे भी निकल जाओ—लेकिन मुझ में और तुम में जो पाँच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूँगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजुर्बा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० लिट और डी-फिल् ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती, दुनिया देखने से आती है। हमारी अम्माँ ने कोई दरजा नहीं पास किया और दादा भी शायद पाँचवीं-छठी जमाअत के आगे नहीं गये, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता हैं; बल्कि इसलिए कि उन्हें हमसे ज्यादा तजुरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह की राज्य-व्यवस्था है, और आठवें हेनरी ने कितने ब्याह किये और आकाश में कितने नक्षत्र हैं यह बातें चाहे उन्हें न मालूम हों; लेकिन हजारों ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है। दैव न करे, आज मैं बीमार

हो जाऊँ, तो तुम्हारे हाथ, पाँव फूल जायँगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबराएँ न बदहवास हों। पहले खुद मरज पहचान कर इलाज करेंगे, उसमें सफल न हुए, तो किसी डाक्टर को बुलाएँगे बीमारी तो खैर बड़ी चीज है। हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने-भर का खर्च महीना भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस-बाईस तक खर्च कर डालते हैं, और फिर पैसे-पैसे को मुहताज हो जाते हैं। नाश्ता बन्द हो जाता है। धोबी और नाई से मुँह चुराने लगते हैं; लेकिन जितना हम और तुम आज खर्च कर रहे हैं, उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है, जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेड मास्टर साहब ही को देखो—एम० ए० हैं कि नहीं, और यहाँ के एम० ए० नहीं, ऑक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते हैं; लेकिन उनके घर का इन्तजाम कौन करता है? उनकी बूढ़ी माँ। हेड मास्टर साहब की डिग्री यहाँ बेकार हो गई। पहले खुद घर का इन्तजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जब से उनकी माताजी ने प्रबन्ध अपने हाथ में लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाई जान यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो और अब स्वतन्त्र हो। मेरे देखते तुम बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ, तुम्हें, मेरी बातें जहर लग रही हैं ......।"

मैं उनकी इस नई युक्ति से नत-मस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आँखों से कहा—"हरगिज नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह बिलकुल सत्य है और आपको उसके कहने का अधिकार है।"

भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले—मैं कनकौए उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा जी भी ललचाता है; लेकिन करू क्या, खुद बेराह चलूँ तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ। यह कर्त्तव्य भी तो मेरे सिर है।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लम्बे हैं ही। उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

(प्रेमचन्द)

अलबम

पंडित शादीराम ने ठंडी साँस भरी, और सोचने लगे—क्या यह ऋण कभी सिर से न उतरेगा।

वे निर्धन थे; परन्तु दिल के बुरे न थे। वे चाहते थे कि चाहे जिस प्रकार भी हो, अपने यजमान—लाला सदानंद—का रुपया अदा कर दें। उनके लिए एक-एक पैसा मोहर के बराबर था। अपना पेट काटकर बचाते थे; परन्तु जब चार पैसे इकट्ठे हो जाते, तो कोई ऐसा खर्च निकल आता कि सारा रुपया उड़ जाता। शादीराम के हृदय पर बछियाँ चल जाती थीं। उनका वही हाल होता था, जो उस डूबे हुए मनुष्य का होता है, जो हाथ-पाँव मारकर किनारे पहुँचे, और किनारा टूट जाए। उस समय उसकी दशा कैसी करुणा-जनक कैसी हृदय-वेधक होती है? वह प्रारब्ध को गालियाँ देने लगता है। यही दशा शादीराम की थी।

इसी प्रकार कई वर्ष बीत गये। शादीराम ने पैसा-पैसा बचाकर अस्सी रुपये जोड़ लिये। उन्हें लाला सदानन्द के पाँच सौ रुपये देने थे। इस अस्सी रुपये की रकम से ऋण उतरने का समय निकट आता प्रतीत हुआ। आशा धोखा दे रही थी। एकाएक उनका छोटा लड़का बीमार हुआ, और लगातार चार महीने बीमार रहा। पैसा-पैसा करके बचाये हुए रुपये दवा-दारू में उड़ गये। पं० शादीराम ने सिर पीट लिया। अब चारों ओर फिर अंधकार था। उसमें प्रकाश की हलकी-सी भी किरण दिखाई न देती थी। उन्होंने ठंडी साँस भरी और सोचने लगे—क्या यह ऋण कभी सिर से न उतरेगा?

लाला सदानंद अपने पुरोहित की विवशता को जानते थे, और न चाहते थे कि वह रुपये देने का प्रयत्न करें। उन्हें इस रकम की रत्ती-भर भी परवा न थी। उन्होंने उसके लिए कभी तगादा तक नहीं किया, न कभी शादीराम से इस विषय की बात छेड़ी। इस बात से वे इतना डरते थे, मानो रुपये स्वयं उन्हीं को देने हों; परन्तु शादीराम के हृदय में शान्ति न थी। प्रायः सोचा करते थे कि वे कैसे भलेमानस हैं, जो अपनी रकम के बारे में मुझसे बात तक नहीं करते! खैर यह कुछ नहीं करते, सो ठीक है; परन्तु इसका तात्पर्य यह थोड़े ही है कि मैं भी निश्चिन्त हो जाऊँ।

उन्हें लाला सदानन्द के सामने सिर उठाने का साहस न था। उसे ऋण के बोझ ने नीचे झुका दिया था। यदि लाला सदानंद ऐसी सज्जनता न दिखलाते, और शादीराम को बार बार तगादा करके तंग करते, तो उन्हें ऐसा मानसिक कष्ट न होता। हम अत्याचार का सामना सिर उठाकर कर सकते हैं, परन्तु भलमनसी के सामने आँखें नहीं उठतीं।

एक दिन लाला सदानंद किसी काम से पं० शादीराम के घर गये, और उनकी आल्मारी में कई सौ बँगला, हिन्दी, अगरेज़ी आदि भाषाओं की मासिक-पत्रिकाएँ देखकर बोले—"यह क्या हैं?"

पंडित शादीराम ने पैर के अँगूठे से ज़मीन कुरेदते हुए उत्तर दिया—"पुरानी पत्रिकाएँ हैं। बड़े भाई को पढ़ने का बड़ा चाव था, वे प्रायः मँगवाते रहते थे। जब जीते थे, तब किसी को हाथ न लगाने देते थे। अब इन्हें कीड़े खा रहे हैं।"

"रद्दी में क्यों नहीं बेच देते?"

"इनमें चित्र हैं। जब कभी बच्चे रोने लगते हैं, तो एक

आध निकालकर दे देता हूँ। इससे उनके आँसू थम जाते हैं।"

लाला सदानन्द ने आगे बढ़कर कहा—"दो-चार परचे दिखाओ तो।

पंडित शादीराम ने कुछ परचे दिखाये। हर-एक परचे में कई-कई सुन्दर और रंगीन चित्र थे। लाला सदानन्द कुछ देर तक उलट पुलटकर देखते रहे। सहसा उनके हृदय में एक विचित्र विचार उठा। चौंककर बोले—"पंडितजी!"

"कहिए!"

"ये चित्र कला-सौन्दर्य के अति उत्तम नमूने हैं। अगर किसी शौक़ीन को पसन्द आ जायँ, तो हज़ार दो हज़ार रुपये कमा लो।"

पण्डित शादीराम ने एक ठण्डी साँस लेकर कहा—

"ऐसे भाग्य होते, तो यों धक्के न खाता फिरता।"

लाला सदानन्द बोले—"एक काम करो।"

"क्या?"

"आज बैठकर, इन पत्रिकाओं में जितनी अच्छी-अच्छी तसवीरें हैं, सबको छाँटकर अलग कर लो।"

"बहुत अच्छा।"

"जब यह कर चुको, तो मुझे बता देना।"

"आप क्या करेंगे?"

"मैं इनका अलबम बनाऊँगा, और तुम्हारी ओर से विज्ञापन दे दूँगा। सम्भव है, विज्ञापन किसी शौक़ीन के हाथ पड़ जाय और तुम चार पैसे कमा लो।"

२

पण्डित शादीराम को यह आशा न थी कि कोयलों में हीरा मिल जायगा। घोर निराशा ने आशा के द्वार चारों ओर से बन्द कर दिये थे। वे उन हत-भाग्य मनुष्यों में से थे, जो संसार में असफल, और केवल असफल रहने के लिए उत्पन्न होते हैं। सोने को हाथ लगाते थे, तो वह भी मिट्टी हो जाता था। उनकी ऐसी धारणा ही नहीं, पक्का विश्वास था कि यह प्रयत्न कभी भी सफल न होगा; परन्तु लाला सदानन्द के आग्रह से दिन-भर बैठकर तसवीरें छाँटते रहे। न मन में लगन थी, न हृदय में चाव; परन्तु लाला सदानन्द की बात को टाल न सके। शाम को देखा, दो सौ एक-से-एक बढ़िया चित्र हैं। उस समय उन्हें देखकर वे स्वयं उछल पड़े। उनके मुखपर आनन्द की आभा नृत्य करने लगी। जैसे फेल हो जाने का विश्वास करके अपने प्रारब्ध पर रो चुके विद्यार्थी को पास हो जाने का तार मिल गया हो। उस समय वह कैसा प्रसन्न होता है? चारों ओर कैसी विस्मित और प्रफुल्लित दृष्टि से देखता है? यही अवस्था पण्डित शादीराम की थी। वे उन चित्रों की ओर इस प्रकार देखते थे, मानों उनमें से प्रत्येक दस-दस रुपये का नोट हो। बच्चों को उधर देखने न देते थे। वे सफलता के विचार से ऐसे प्रसन्न हो रहे थे, जैसे सफलता प्राप्त हो चुकी हो, यद्यपि वह अभी कोसों दूर थी। लाला सदानन्द की आशा उनके मस्तिष्क में निश्चय का रूप धारण कर चुकी थी।

लाला सदानन्द ने चित्रों को अलबम में लगवाया, कुछ उच्च कोटि के समाचार-पत्रों में विज्ञापन दे दिया। अब पण्डित शादीराम हर समय डाकिए की प्रतीक्षा करते रहते थे। रोज

सोचते कि आज कोई चिट्ठी आवेगी। दिन बीत जाता और कोई उत्तर न आता था। रात को आशा सड़क पर धूल की तरह बैठ जाती थी; परन्तु दूसरे दिन लाला सदानन्द की बातों से टूटी हुई आशा फिर बँध जाती थी, जिस प्रकार गाड़ियाँ चलने से पहले दिन की बैठी हुई धूल हवा में उड़ने लगती है। आशा फिर अपना चमकता हुआ मुख दिखाकर दरवाजे पर खड़ा कर देती थी। डाक का समय होता, तो बाजार में ले जाती, और वहाँ के डाकखाने पहुँचाती थी। इसी प्रकार एक महीना बीत गया; परन्तु कोई पत्र न आया। पण्डित शादीराम सर्वथा निराश हो गये; परन्तु फिर भी कभी-कभी सफलता का विचार आ जाता था, जिस प्रकार अँधेरे में जुगनू चमक जाता है। यह जुगनू की चमक निराश हृदयों के लिए कैसी जीवनदायिनी, कैसी हृदय-हारिणी होती है! इसके सहारे भूले हुए पथिक मंजिल पर पहुँचने का प्रयत्न करते और कुछ देर के लिए अपना दुःख भूल जाते हैं। इस झूठी आशा के अन्दर सच्चा प्रकाश नहीं होता; परन्तु यह दूर के संगीत के समान मनोहर अवश्य होती है। इसमें वर्षा की नमी हो या न हो; परन्तु इससे काली घटा का जादू कौन छीन सकता है?

आखिर एक दिन शादीराम के भाग्य जागे। कलकत्ते के एक मारवाड़ी सेठ ने पत्र लिखा कि अलबम भेज दो, यदि पसन्द आ गया, तो खरीद लिया जायगा। मूल्य की कोई चिन्ता नहीं, चीज अच्छी होनी चाहिए। यह पत्र उस करवट के समान था, जो सोया हुआ मनुष्य जागने से पहले बदलता है और उसके पश्चात् उठकर बिस्तरे पर बैठ जाता है। यह किसी पुरुष की करवट न थी। यह भाग्य की करवट थी। पण्डित शादीराम दौड़े हुए लाला सदानन्द के पास पहुँचे, और उन्हें पत्र दिखलाकर बोले—"भेज दूँ?"

लाला सदानन्द ने पत्र को अच्छी तरह देखा और उत्तर दिया—"रजिस्टर्ड कराकर भेज दो। शौकीन आदमी है, खरीद लेगा।"

"और मूल्य ?"

"लिख दो, एक हजार रुपये से कम पर सौदा न होगा।"

कुछ दिन बाद उन्हें उत्तर में एक बीमा मिला। पण्डित शादीराम के हाथ-पैर काँपने लगे; परन्तु हाथ-पैरों से अधिक उनका हृदय काँप रहा था। उन्होंने जल्दी से लिफाफा खोला, और उछल पड़े। उसमें सौ-सौ रुपये के दस नोट थे। पहले उनके भाग्य ने करवट ली थी, अब वह पूर्णरूप से जाग उठा। पण्डित शादीराम खड़े थे, बैठ गये। सोचने लगे—अगर दो हजार रुपये लिख देता तो शायद उतने ही मिल जाते। इस विचार ने उनकी सारी प्रसन्नता किरकिरी कर दी।

३

सन्ध्या के समय वे लाला सदानन्द के पास गये, और पाँच सौ रुपये के नोट सामने रख कर बोले—परमात्मा को धन्यवाद है कि मुझे इस भार से छुटकारा मिला। अपने रुपये सँभाल लीजिए। आपने जो दया और सज्जनता दिखलाई है, उसे मैं मरण-पर्यन्त न भूलूँगा।

लाला सदानन्द ने विस्मित-से होकर पूछा—"पण्डितजी! क्या सेठ ने अलबम खरीद लिया ?"

"जी हाँ, रुपये भी आ गये।"

"एक हजार ?"

"जी हाँ। नहीं तो मुझ निर्धन ब्राह्मण के पास क्या था, जो आपका ऋण चुका देता, परमात्मा ने मेरी सुनली।"

"मैं पहले भी कहना चाहता था; परन्तु कहते हुए हिच-किचाता था कि आपके हृदय को कहीं ठेस न पहुँचे। पर, अब मुझे यह भय नहीं है; क्योंकि रुपये आपके हाथ में हैं। मेरा विचार है कि आप ये रुपये अपने ही पास रक्खें। मैं आपका यजमान हूँ मेरा धर्म है कि आपकी सेवा करूँ।"

पण्डितजी की आँखों में आँसू आ गये, दुपट्टे से पोंछते हुए बोले—"आप-जैसे सज्जन संसार में बहुत थोड़े हैं। परमात्मा आपको चिरंजीवी रक्खे, परन्तु अब तो मैं ये रुपये न लूँगा। इतने वर्ष आपने माँगे तक नहीं, यह उपकार कोई थोड़ा नहीं है। मुझे इससे उऋण होने दीजिए। ये पाँच सौ रुपये देकर मैं हृदय की शान्ति खरीद लूँगा।"

निर्धन ब्राह्मण की यह उदारता और सच्चरित्रता देखकर सदानन्द का मनोमयूर नाचने लगा। उन्होंने नोट ले लिये। मनुष्य रुपये देकर भी ऐसा प्रसन्न हो सकता है, इसका अनुभव उन्हें पहली ही बार हुआ। पण्डित जी के चले जाने पर उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं, और किसी विचार में मग्न हो गये। इस समय उनके मुख-मण्डल पर एक विशेष आत्मिक तेज था।

४

छः मास बीत गये।

लाला सदानन्द बीमार थे। ऐसे बीमार वे सारी आयु में न हुए थे। पण्डित शादीराम उनके लिए दिन-रात माला फेरा करते थे। वे वैद्य न थे, डॉक्टर न थे। वे ब्राह्मण थे, उनकी औषध माला फेरना ही थी, और यह काम वह अपनी आत्मा की पूरी शक्ति, अपने मन की पूरी श्रद्धा से करते थे। उन्हें औषध की अपेक्षा आशीर्वाद और प्रार्थना पर अधिक भरोसा था।

एक दिन लाला सदानन्द चारपाई पर लेटे थे। उनके

पास उनकी बूढ़ी माँ उनके दुर्बल और पीले मुख को देख-देखकर अपनी आँखों के आँसू अन्दर-ही-अन्दर पी रही थीं। थोड़ी दूर पर, एक कोने में, उनकी नवोढ़ा स्त्री घूँघट निकाले खड़ी थी, और देख रही थी कि कोई काम ऐसा तो नहीं, जो रह गया हो। पास में पड़ी हुई एक चौकी पर पण्डित शादीराम बैठे रोगी को भगवद्गीता सुना रहे थे।

एकाएक लाला सदानन्द बेसुध हो गये।

पण्डितजी ने गीता छोड़ दी, और उठकर उनके सिरहाने बैठ गये। स्त्री गर्म दूध लेने के लिए बाहर दौड़ी, और माँ अपने बेटे को घबराकर आवाजें देने लगी। इस समय पण्डितजी को रोगी के सिरहाने के नीचे कोई कड़ी-सी चीज चुभती हुई जान पड़ी। उन्होंने नीचे हाथ डालकर देखा, तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही! यह सख़्त चीज वही अलबम था, जिसे किसी सेठ ने नहीं, बल्कि स्वयं लाला सदानन्द ने खरीद लिया था।

पण्डित शादीराम इस विचार से बहुत प्रसन्न थे कि उन्होंने सदानन्द का ऋण उतार दिया है; परन्तु यह जानकर उनके हृदय पर चोट-सी लगी कि ऋण उतरा नहीं बल्कि पहले से दूना हो गया है।

उन्होंने अपने बेसुध यजमान के पास बैठे-बैठे एक ठण्डी साँस भरी और सोचने लगे—क्या यह ऋण कभी न उतरेगा?

कुछ देर बाद लाला सदानन्द को होश आया। उन्होंने पण्डितजी से अलबम छीन लिया; और धीरे से कहा—"यह अलबम सेठ साहब से अब हमने मँगवा लिया है।"

पण्डितजी जानते थे कि यजमान जी झूठ बोल रहे हैं; परन्तु वे उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक सज्जन; अधिक उपकारी और अधिक ऊँचा समझने लगे थे। (सुदर्शन)

कला और कृत्रिमता

सम्राट् ने एक महल बनाने की आज्ञा दी—अपने वैभव के अनुरूप अपूर्व सुख और सुखमा की सीमा।

देश-भर में बड़े-बड़े स्थपतियों का दिमाग उसी का नक्शा तैयार करने में भिड़ गया। नक्शा तैयार हुआ। उसे देखकर सम्राट फड़क उठे; उनके गर्व को बड़ी मधुर गुदगुदी हुई। जिसका नक्शा पसन्द हुआ था, उसके भाग्य खुल गये।

जिस समय उस महल की तैयारी का चित्र उनके मनोनेत्र के सामने खड़ा हुआ, संसार के बड़े-से-बड़े प्रासाद-निर्माता नरेन्द्र—आर्य्यावर्त, मिस्र, मय, काबुल, चीन, पारस, ग्रीस, रोम आदि के—तुच्छ मालूम हुए; क्योंकि उन्होंने भव्यता और चारुता का जो प्रदर्शन किया, वह इसके आगे कुछ भी न था।

जिन मदों से सम्राट मत्त हो रहे थे, आज उसमें एक और बढ़ा।

जिस भाग्यवान् स्थपति की कल्पना ने इस भवन की उद्भावना की थी, उसके तो पैर ही जमीन पर न पड़ते थे। सातवें आसमान की उड़ान में उसे अपनी इस कृति के सिवा अन्यत्र कला दीख ही न पड़ती थी। अस्तु।

संसार-भर की एक से-एक मूल्यवान् और दुर्लभ सामग्रियाँ एकत्र की गईं और वह प्रासाद बनने लगा। लाखों वास्तुकार लाखों शिल्पी काम करने लगे।

नीहार भी उन्हीं में से था। संगतराशों की एक टोली का

वह मुखिया था और उसके काम से प्रधान सदैव सन्तुष्ट रहते थे; किन्तु वह अपने काम से सन्तुष्ट न था। उसमें कल्पना थी—जो नक्शे उसे पत्थरों में तराशने को दिये जाते, उनमें हेर-फेर और घटाव-बढ़ाव की जो भी आवश्यकता सुरुचि को अभीष्ट होती, उसे तुरन्त भास जाती। परन्तु उसका कर्तव्य था केवल आज्ञा-पालन; अतः यह आज्ञापालन वह अपनी उमंग को कुचल-कुचलकर किया करता। पत्थर गढ़ते समय टाँकी से उड़ा हुआ छींटा उसकी आँखों में उतना न कसकता, जितना उन नक्शों की कुघरता।

इतना ही नहीं, उस सारे महल की कल्पना ही उसे वास्तु के मूल-पुरुष, मय असुर, की ठठरी-सी मालूम होती और उस स्थान पर पहुँचते ही उसे ऊजड़ भयावनेपन और बद-नुमापन की ऐसी प्रतीति होती कि वह सिहर उठता, मन में कहता—अच्छा ढड्ढा खड़ा किया जा रहा है। क्या ढकोसला है!

और, उसकी कल्पना एक दूसरा ही कोमल स्वप्न देखने लगती—

धीरे-धीरे यह चर्चा महाराज के कानों तक पहुँची कि नीहार अपने घर में एक महल बना रहा है—एक छोटा-सा नमूना! लोग राजप्रासाद के और इसके सौन्दर्य की तुलना करने लगे हैं कि वह इसके आगे कुछ भी नहीं; इसकी चारुता और कौशल अपूर्व है। नगर-भर में इसकी धूम थी।

अधीश्वर की भावना को चोट लगी। जिस मूर्त्ति की वह उपासना कर रहे थे, उस समय जैसे किसी ने आघात किया हो; परन्तु वे ज्वलन प्रकृति के न थे, उनके हृदय में उसे देखने की इच्छा जाग उठी।

उनके हृदय में कला का राजस प्रेम था, वह उन्हें प्रेरित करने लगा; क्योंकि उनसे कहा गया था कि जिस समय वह काम करने लगता है, मग्न हो जाता है, कहाँ क्या हो रहा है, इसकी खबर ही नहीं रह जाती। उसके चारों ओर देखने वालों की भीड़ लग रही है; किन्तु इससे क्या! वह ज्यों का त्यों अपने विनोद में लगा रहता है। वे इस तल्लीनता को देखने के लिए उत्सुक हो उठे, अपने को रोक न सके।

एक दिन वह चुपचाप नीहार के यहाँ पहुँचे। दर्शक-समूह सम्राट् को देखकर खड़बड़ाया; किन्तु उनके एक इङ्गित से सब जहाँ के तहाँ शान्त हो गये। चुपचाप सम्मान-पूर्वक उन्हें रास्ता दे दिया।

कलावंत की उस तन्मयता, उस लगन, उस समाधि के देखने में मनुष्य स्वयं तमाशा बन जाता था। महाराज भी वैसे ही रह गये। जिस प्रकार अचेतन बनकर काम करने लगता है, उसी प्रकार यह चेतन, अचेतन यन्त्र होकर, अपनी धुन में लगा हुआ था। उसी की कामना के प्राबल्य ने चेतन-अचेतन का भेद मिटा दिया था—तभी न वह पत्थर में जान डाल सकता था।

सम्राट् का स्वप्न विकीर्ण होगया, जैसे गुलाब की पंखड़ियाँ अलग-अलग होकर उड़-पुड़ जाती हैं। जिस प्रकार शुक्ति में रजत का भ्रम उसी समय तक रहता है, जब तक वास्तविक रजत सामने नहीं आ जाता, उसी प्रकार अपने प्रासाद के सम्बन्ध में वे जिस कला-आभास से अभिभूत हो उठते थे, यह प्राकृत कला दीख पड़ते ही वह जाने कहाँ विलीन हो गया।

विजम्भा की मूर्त्ति बने सम्राट उसे देख रहे थे कि नीहार

क्षणेक के लिये किसी कारण अपनी उस निद्रा से जागृत हुआ। उसकी दृष्टि उन पर पड़ी।

उस समय उसके हृदय में बड़ा हर्ष हुआ। उसने अपने इस निरुद्देश्य निर्माण का फल-सा पा लिया और वह सम्राट के चरणों में भक्ति-भाव से नत हुआ।

सम्राट् ने उसे उठा कर अपने उन्मुक्त हृदय से लगा लिया। कह उठे—"वाह! यहाँ तो पत्थर एक स्निग्ध-हृदय से एकतात्मकता करके मोम बन गया है। नीहार! तू धन्य है। निस्संदेह किसी शाप-वश पृथ्वी पर आया है, तभी तो यह वैजयन्त प्रासाद यहाँ निर्मित हुआ है।"

"नरेन्द्र? आप ही यह रहस्य जानें।"—विनीत शिल्पी ने अपनी लघुता व्यक्त करके कहा।

"तो अब इसका निर्माण इसके रूप-स्वरूप के अनुसार होने दे—वह राज-भवन न बनकर यही बनेगा।"

"जो आज्ञा"—कहकर वह पुनः नत हुआ।

महाराज ने महास्थपति को बुलाने की आज्ञा दी।

हरकारे दौड़े और बात कहते वह महाराज के सामने उपस्थित किया गया। नीहार की कृति पर उसकी निगाह पड़ी, साथ ही मुँह बिचक गया। महाराज ने उस ओर इशारा करके कहा—"देखो!"

महास्थपति नम्र होकर देखने लगा; किन्तु चेहरे पर की शिकन ज्यों की त्यों कायम रही।

सम्राट ने पूछा—"क्यों, कैसा है?"

"कैसे कहूँ।"

"क्यों, संकोच क्या है?"

"यह देव को पसन्द आ चुका है।"

"तो उससे क्या हुआ।"—सम्राट ने साहस बँधाते हुए कहा—"तुम अपनी स्पष्ट राय दो।"

"एक खिलवाड़ है!"—नाक सिकोड़कर उसने कहा।

"तभी तो इतना आकर्षण है!"

"किन्तु निरर्थक तो है स्वामी!"

"नहीं, रहस्यमय कह सकते हो। निरर्थक तो कोई वस्तु नहीं। जिसे हम नहीं समझ पाते, उसे निरर्थक कह बैठते हैं!"

"हाँ भगवन्! किन्तु यदि वही रहस्य दुरूह हो जाता है, तो व्यर्थ अवश्य हो जाता है—चाहे निरर्थक न हो।"

"किन्तु, यहाँ तो उसका गूढ़ हो जाना आवश्यक था। वही तो कला है।"

"सेवक की समझ में यह न आया।"

"सुनो। केवल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तो इसके निर्माता का उद्देश्य हुई नहीं। उसे तो एक वास्तु—निवास-स्थान—की रचना करनी थी, किसी सम्राट की पद-मर्यादा के अनुरूप; अतएव ऐसे भवन के लिए जितने अलङ्करण की अपेक्षा थी उसकी इसमें तनिक भी कसर नहीं। किन्तु, वहीं तक बस। उससे एक रेखा भी अधिक नहीं; क्योंकि घर तो घर, चाहे कुटी हो वा राजमहल; उसका प्रधान उपयोग तो यही है न कि उसमें जीवन बसेरा ले—पंछी अपना नीड़ भी तो इसी सिद्धान्त पर बनाता है। वह मृग-मरीचिका की तड़क-भड़क-वाला पिंजरा नहीं बनाता, जो जीवन को बन्दी करके ग्रस लेता है। तुम्हारे और उसके कौशल में भी वही अन्तर है।

केवल बाहरी आकर्षण होना ही कला नहीं। उसका रूप प्रसंग के अनुकूल होना ही उसकी चारुता है।"

"नाथ, अपने नन्हेपन के कारण यह ऐसा जान पड़ता है।"—नम्रता दिखाते हुए उसने सीख दी।

"अजी, यह न कहो! विशालता तो ऐसी वस्तु है कि वह बहुतेरे दोषों को दाब लेती है! यही नमूना जब पूरे पैमाने पर बनेगा तो और भी खिल उठेगा। तो भी"—उन्होंने हँस कर कहा—"यदि तुम्हारे जान, यह अपने नन्हेपन के कारण ही इतना रुचिर है, तो मँगाओ अपना महल वाला, वह नन्हा नमूना। दोनों को सामने रखकर तुलना हो जाय!"

महास्थपति से इसका कोई उत्तर न बना; क्योंकि अब वह जान गया था कि महाराज में जो निगाहदारी ऊँघ रही थी, उसे कला की इस प्रकृत वस्तु ने पूर्णतः जगा दिया है; अतः वे मेरी आलोचना के पोलेपन को भली-भाँति समझ रहे हैं। इस कथनोपकथन के बीच-बीच में वह महाराज की निगाह बचाकर क्षुब्ध दृष्टि से नीहार को भी देखता जाता था; किन्तु अब उसकी वह दृष्टि नीहार पर नहीं पड़ रही थी—अब नत होकर पृथ्वी से करुणा की याचना कर रही थी।

यह दशा देखकर नीहार से न रहा गया। महाराज से उसने कुछ निवेदन करने की आज्ञा ली।

उसने बड़ी शिष्टता से कहा—"देव, वे आचार्य हैं, मैं उनकी चरण-धूलि के समान भी नहीं। उनकी और मेरी कृति की तुलना न्याय नहीं है—मल्लयुद्ध में बराबर के जोड़ छोड़े जाते हैं।"

"परन्तु वह तो प्रतिभा की तुलना है, जो अपने विकास

से छोटे को भी बड़े के बराबर बैठा देती है!"—महाराज ने गम्भीर होकर कहा। और महास्पति को देखने लगे।

"किन्तु"—नीहार दृढ़ता से बोला—"इस प्रसंग में तो एक और सूक्ष्म विचार है तथा वही इसका मूल कारण है। यदि श्रीमान् उसे सुन लेंगे, तो यही आदेश देंगे कि इन दोनों रचनाओं की तुलना उचित नहीं।"

"वह क्या?"—महाराज ने उत्सुकता से पूछा।

"यही कि"—कलावंत के मुँह पर मुसकान थी; किन्तु इस प्रसंग से नहीं, वही जो उस पर सहज खेला करती थी—"यह कल्पना 'स्वान्तःसुखाय' उपजी है, और वह 'हुकुम पाई' उपजाई गई है। देव कोई फर्माइश मुझे भी दें, तो मेरी कलई आप ही खुल जाय!"

"बस, बस अपने महास्थपति को तो तुमने परास्त किया ही था, अपने महाराज को भी हरा दिया!"—प्रसन्नता से गद्गद् सम्राट ने कहा।

उसके लिए, उनकी आँखों में स्नेह झलक रहा था और महास्थपति की दृष्टि में आसीस—केवल आसीस ही नहीं, वन्दना भी उमड़ी पड़ती थी।

(राय कृष्णदास)

समझौता

इक्कीसवर्षीय कुसुम जब जीवन से समझौता कर बैठी तब वह घबरा उठी—घबरा उठी।

वह उस दिन अपने-आपके सामने खड़ी थी, नहीं, वरन् यों कहिए कि निकट खड़ी थी, बिलकुल पास। और उस क्षुब्ध, आहत, कम्पित श्वास को प्रत्येक रोम में अनुभव कर रही थी—स्वयं आप। मन के रन्ध्रों में से एक में द्वन्द्व चलने लगा-जीवन से समझौता? उससे परिचय! किन्तु समझौता कैसा? जिस अखण्ड जीवन को न कभी पहचाना और जाना जा सकता है, उससे समझौता, उससे परिचय? जिस जीवन पर प्रत्येक पल विचित्रता से एकाकार रहता है, निविड़ परिचय की सन्धि बेला में भी कभी जो परिचय छिन्न-भिन्न होकर रह जाता है। केवल मात्र नूतन परिचय और नवीन विस्मय, उसी जीवन से समझौता?

नहीं-नहीं, यह तो एक असम्भव, अनहोनी बात है। किन्तु दूसरे पल दूसरे रन्ध्र से प्रश्न उठने लगे—फिर, इस तरह वह जी भी कैसे सकती है।

इक्कीस वर्ष जो अभ्यास अणु-परमाणु में संक्रामक व्याधि-सा प्रवेश कर चुका है, उसे पल-भर में परिवर्तित करे कैसे? इतने वर्ष के परिचित बाहरी जगत् को त्यागकर वह अवगुण्ठिता वधू बने कैसे? किसी के सन्तोष के लिए अपनी सत्ता को भूले—हँसी, रहन-सहन, इच्छा-अनिच्छा और भावना-परिवर्त्तन लावे कैसे? चाहे सम्भव हो या असम्भव; किन्तु

फिर भी उसी जीवन के साथ समझौता करने का फल उपस्थित था, फिर उसे वह अस्वीकार कैसे कर दे ?

तीस, न चालीस और न पचास, केवल इक्कीस वर्ष तो अभी सहे थे—जल से स्वच्छ, सुन्दर होकर। फिर अभी से समझौता, किन्तु अभी तो उसका भाग्य और निष्ठुर सत्य था, फिर क्या करती वह और क्या करता विधाता ?

एक विधवा ने आकर उसके हाथ पर पत्र धर दिया, पूछा—"दुलहिन, दिन-रात यों ही सोचा करोगी, या स्नान भोजन भी करना है ?"

कुसुम का विमुख चित्त और भी रूठ बैठा, बोली—"भूख नहीं है।" उसने घड़ी की ओर दृष्टि उठाई, दो बज रहे थे।

विधवा हँसी—"तुमसे कितनी बार कह चुकी बहन, सवेरे दूध-मिठाई भर-पेट खा लिया करो। बस घर की रीति यही है कि मर्दों के पीछे स्त्रियाँ भोजन करती हैं। पगली, उठो-उठो।" विधवा उसकी जेठानी थी। कुसुम के विवाह को दो-चार मास बीते होंगे। परेश विख्यात ज़मींदार था।

"मुझ से दूध-मिठाई नहीं खाई जाती।"

"जानती हूँ बहन"—परम स्नेह से विधवा कहने लगी—"तुम दूसरी तरह से पली हो, पिता के घर पाश्चात्य रीति से रहती थीं, पार्टियों में जाती थीं, कॉलेज में पढ़ती थीं, सब जानती हूँ; परन्तु असमञ्जस्य का सामना जब कभी हम स्त्रियों के जीवन में भी आ जाता है, तब उसे सँभालना, निबाहना भी हमारा ही धर्म है।"

कुसुम का जी चाहने लगा कि वह कह दे कि स्त्रियों के लिए त्याग करना आदि, क्या पुरुष का धर्म कुछ भी नहीं है ?

किन्तु नहीं, वह फिर भी चुप रह गई। इन बेसमझों से कुछ भी नहीं कहना चाहती। महेश्वरी कह चली—"परेश को दोष देना वृथा है। जन्म से लेकर अभी तक वह जिस स्थिति में पुष्ट हुआ है, वहाँ पाश्चात्य छाया तक को न पहचानना उसके लिए स्वाभाविक है, तो क्या तुम दुख पाओगी कुसुम? घृणा—घृणा करना?"

"हाँ, घृणा ही समझो, क्योंकि वह परिस्थिति थी ही ऐसी, जहाँ उसने देखा, सीखा नारी के अन्तर्मुखी रूप को; सेवा, त्याग को, लज्जा, निष्ठा और संयम को। अनमेल हो गया है, बड़ा भारी अनमेल कुसुम। किन्तु इसके लिए न तो परेश एम. ए. दोषी हैं और न विदुषी कुसुम। माता-पिता। वरन् नहीं, नहीं, यों कहिए कि आये दिन की परिस्थिति ही ऐसी है। पहले छोटे में विवाह होता था, जब कि वर-वधू के मन की वृत्तियाँ कोमल रहती थीं, अभ्यास का बन्धन गम्भीर न होने पाता था। और अब की बात दूसरी है, बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में न जाने कितने तर्क, शंकाएँ, अभ्यास, मत-स्वातन्त्र्य आदि मन में दृढ़ता से अँक जाते हैं। तुम कहोगी, यह क्रीत-दासी का युग नहीं है और न अन्धविश्वास का। यह स्वाधीनता और स्वतन्त्रता का युग है। मैं स्वीकार करती हूँ, इसे। कहना केवल, इतना है कि प्रकृति के राज्य में न जाने कितने अनमेल होते रहते हैं; किन्तु अपने निपुण वर से वह उन अनमेल को मेल कर देती है। करती है यह सब प्रकृति ही, पुरुष नहीं। अच्छा जल्दी आना बहन।"

२

आठ बजे दिन को कुसुम की आँख खुली। धूप फैल चुकी

थी। उसने बगल में देखा, पति नित्य की भाँति छः बजे उठ गये थे। कुसुम उठकर बाहर आई। दृष्टि पड़ गई ठीक सामने, जहाँ नंगे बदन परेश बैठा तेल-मालिश करा रहा था।

विरक्ति, लज्जा से वह सहम-सी गई—छिः कैसी नग्नता, असभ्यता है—न लज्जा है, न शर्म; अशिक्षित, मूर्ख, गँवारों की तरह नग्न बदन सबके सामने बैठे तेल-मालिश करा रहे हैं। वहाँ से स्त्रियाँ भी आ-जा रही हैं; किन्तु वे वैसे ही निर्विकार हैं। अर्द्ध-उलङ्ग जाँघ पर वह गमछा, छिः छिः।

और उधर परेश उसे देखकर मुस्कुरा पड़ा। वह मुस्कुराहट कदाचित् प्रियतमा को अभिनन्दित करती हो—सुप्रभात, सुप्रभात।

परन्तु न जाने क्यों कुसुम की भौंहें सिकुड़ गईं। वह चुपचाप चली गई। स्नान कर लौटी तो दासी बोली—"चाय ठंडी हो रही है।"

विस्मय का प्रथम आवेग कह जाने के बाद सहमकर कुसुम उसके पीछे चल पड़ी। कमरे के बीच में टेबुल रखी गई थी, उस पर प्लेटों में अण्डे, डबलरोटी, मक्खन, बिस्कुट आदि। कुसुम को लगा उसे अपमानित करने के लिए; हास्यास्पद बनाने के लिए, टेबुल पर प्रत्येक वस्तु चुनकर रखी गई है। अपमान नहीं तो क्या? क्या वह जानती नहीं है कि उस घर में यह वस्तुएँ कैसी दुष्प्राप्य हैं? भोजन तो दूर की बात ठहरी—उन सब को छूने से यहाँ स्नान और गंगा-स्पर्श की व्यवस्था है, तो पति उसे घर भर के सामने हास्यास्पद बनाना चाहते हैं। केवल कौतुक ही नहीं—उसके अभिमान को, आत्म-मर्यादा को व्यंग-परिहास से पति आहत भी करना चाहते हैं। वह स्थिर निश्चय पर चली गई। और उसके नारीत्व का

सारा सौंदर्य सूख गया, अंग-प्रत्यंग कठोर हो उठे, मुख रेखाएँ वक्र हो गईं।

द्वार पर से जेठानी ने पूछा—"चाय ठंडी तो नहीं हो गई बहन और भेजूँ?"

एक अवज्ञा के साथ उसने उस ओर देखा, कहा—"भेजो।"

३

कपड़े पहनकर परेश बाल सँवार रहा था। दुष्ट ग्रह की नाईं कमरे में घुसी कुसुम—"कहाँ जा रहे हो?"

"सिनेमा।"

"मैं भी चलूँगी।"—वह बोली इस तरह, मानों उस संसार के नियम, शृङ्खला, आचार आदि को दोनों हाथों से दबाकर, पीसकर निश्चिन्त कर देना चाहती हो और स्वयं वहाँ की एकछत्र रानी बन जाना चाहती हो। परेश का मुँह सूख गया, उस घर के कुत्ते बिल्ली तक ने जिस बात को कभी नहीं किया, उसे वह कैसे करे? पत्नी के लिए बहुत कुछ त्याग और परिवर्तन करना है, सो तो वह करता ही चला आ रहा है; किन्तु जो बात उसके अधिकार के बाहर की है, उसे वह करे कैसे?

"चलो।"—कुसुम ने कहा।

"चलोगी, तो कपड़े बदल लो।"

"बदलकर आई हूँ।"

विस्मय के साथ परेश पत्नी को देखने लगा। उस दृष्टि को कुसुम सह न सकी—आगे-आगे चल दी।

"ब्लाउज़ तो पहन लेतीं।"—धीरे बोला परेश।

"ब्लाउज़ नहीं तो यह क्या है?"

पत्नी के कहने से उसने आश्चर्य-चकित नेत्र उठाये—"हूँ। है, महीन जार्जेट की साड़ी के नीचे छोटा-सा वेस्टकोट की तरह कुछ है, शायद उसी का नाम ब्लाउज़ हो। वह चुप हो रहा।"

भोजन पर बैठा था परेश, भाभी पंखा कर रही थी, कुसुम पान बनाते-बनाते बोली—"जीजी, कल का फिल्म अच्छा था, इंगलिश फ़िल्म था न। तुमने तो जिंदगी-भर देखा भी न होगा सिनेमा। नहीं न? यदि चलतीं कभी, तो देख पातीं, मर्द कैसे असभ्य होते हैं। छिः छिः मेरा वहाँ बैठना मुश्किल कर दिया। मानो मैं कोई तमाशा पहुँच गई वहाँ, घूर-घूरकर देखना और गज़ल गाना। पूछो न इनसे।"

"क्यों भैया? और तुम बैठे-बैठे देख रहे थे?"

"फिर करता ही क्या?"

"करते क्या? क्या तुम मर्द नहीं हो? घर की बहू...."

परेश उत्तर देना न चाहता था; परन्तु फिर भी कहना पड़ा—"यदि नग्न सत्य को तुम मुझ से ही सुनना चाहती हो, तो सुनो। कहता था कि जब स्त्रियाँ स्वयं ही अपनी लज्जा को विवश करना चाहती हैं, अपनी नग्नता विश्व को दिखलाना चाहती हैं, तो विश्व यदि सहज कौतुक से, विस्मय से उस ओर एक बार देख ले, तो हम उसे अपराधी कैसे कह सकते हैं। अपना सम्मान तो अपने हाथ में है भौजी।—पालक का साग बड़े मजे का बना है, और थोड़ा देना।"

४

धीरे-धीरे कुछ वर्ष बीते। कुसुम अब इस परिवार के आचार-व्यवहार को कुछ समझने लग गई थी। रुपये-पैसे जेठानी ने सब उसी को सौंप दिये थे। परेश घर में बहुत

कम रहता, अपने ग्राम आदि के देखने में—बाहर ही बाहर महीने के बीस दिन निकल जाते। कुसुम कभी सिनेमा में जाती, कभी जी चाहता, तो मायके चल देती। उसके कार्य की न कोई समालोचना करता और न निषेध।

पूर्ण द्विप्रहर में कुसुम उस दिन मूल्यवान कोच पर पड़ी थी। उसके चहुँ ओर ऐश्वर्य का उज्ज्वल रूप था और उस ऐश्वर्य के भीतर पड़ी हुई स्वयं वह अवश्य रूप-सी थी। परन्तु, फिर भी उस रूप में किसी एक वस्तु की कमी थी। कदाचत कोमलता हो, या और कुछ हो। कौन जाने। न जाने किस दैत्य के अत्याचार से उसका शरीर रूखा, कर्कश-सा, हो रहा था। न जाने किस निर्मोही ने उसके अन्तर, बाहर का सब सौंदर्य, मिठास, चुन-सा लिया था। पलकों में विराग, वितृष्णा की गहरी रेखा पड़ गई थी और ओष्टाधर पर विद्रोह की हँसी।

वह सोच रही थी—उसका जीवन सार्थक होने जाकर भी व्यर्थ क्यों हो गया। उसका सपना केवल सपना ही क्यों रह गया? इसका अपराध वह किस के मत्थे मढ़े, अपने व पति के अथवा पिता-माता के, परिस्थिति के या ईश्वर के? नहीं—नहीं, जो कि प्रत्यक्ष नहीं है—ऐसे व्यक्ति की सत्ता को वह स्वीकार नहीं कर सकती। ईश्वर तो भक्तों की एक भावना है। यदि वह है, तो वह उसे देख क्यों नहीं पाती?

"बहूजी"—उसकी चिन्ता में बाधा पड़ी।

"क्या है?"—इस स्पष्ट स्वर को सुनकर मालिन चुप रही।

"कहती क्यों नहीं क्या बात है, बिना हुक्म के कमरे में क्यों आई? यदि मेरे सामने आना था, तो साफ कपड़े क्यों न पहन कर आई?"

"और कपड़े नहीं हैं रानी।"—वह डरते-डरते बोली।

"तो आई क्यों? कैसी दुर्गन्ध फैल रही है?"—कुसुम ने सेण्ट की शीशी उठा ली—"जल्दी कह, क्या कहती है?"

"दूसरा माली लगा लिया, हम भूखों मरते हैं मालिक।"

"तो मैं क्या करूँ? आठ दिन न तू आई, न माली काम पर आया, फिर लगा न लेती तो क्या करती?"

"वे तो अब भी बेसुध पड़े हैं, मेरा बुखार अब कुछ मद्धिम भया, उधर लड़के भूखे मर रहे हैं। कुछ दे दो रानी।"—वह उसके पैरों से लिपट गई।

"अरे छोड़-छोड़, पैर मैले हो जायेंगे। सब तुम्हारी बनाई हुई बातें हैं। जाओ।"

"विश्वास न हो तो चलकर मेरे साथ देख आओ। रानी, वे अचेत पड़े हैं।"

"ऐसी स्पर्द्धा? मैं तेरे साथ चलूँ देखने के लिए? चल दूर हो, निकल यहाँ से। और सुन—घर खाली कर दे। मेरा माली वहाँ रहेगा।"

कुसुम के मकान के सामने फूल का बगीचा था और पीछे फल का। फल के बगीचे के कोने में दो छोटे-छोटे मिट्टी के घर बने थे, वहीं यह मालिन रहती थी। दीर्घश्वास को हृदय में दबाकर चुपचाप उठकर मालिन चली गई। और कुसुम फिर अपनी चिन्ता में लौट आई। वह सिर दबाकर बैठ गई। दासी चाकर व्यस्त हुए, गुलाबजल और पंखा लेकर दौड़े।

वैशाख की पवन अग्नि जैसी तप्त हो रही थी। चील-कौए

मारे प्यास के चिल्ला रहे थे। पीपल की छाया में बैठी गौर-इयाँ हाँफ रही थीं। दाँड़ पर मैना, हीरामन स्तब्ध हो रहे थे। उनके सूखे कंठ में स्वर की झंकार मर मिटी थी।

ग्राम का पथ अजगर की तरह निस्पन्द-निर्वाक पड़ा था और नदी-जल सूखकर बीच में हो रहा था। मैदान में यहाँ-वहाँ सूखे पत्तों के ढेर लगे थे। किसी चरवाहे का स्वर कभी-कभी गूँज उठता था। जमीदार के प्रासाद का कोलाहल नीरव था और उस प्रासाद दोपहरी में वह प्रासाद स्वर्ण-लङ्का के सुवर्ण-द्वार-सा खड़ा था। कमरों में खिड़कियों और दरवाजों में खस की मोटी टट्टियाँ लगी थीं, भीतर पंखे चल रहे थे।

एक दिन शीतल द्वार पर जोर से आघात होने लगा। विरक्त होकर कुसुम ने द्वार खोला। पतिदेव खड़े थे।

"ऐसी गर्मी में और दोपहर में क्यों चले? आओ भीतर बैठो। जरा ठंडे हो जाओ। फिर नहाना।"

परेश आठ दिन के बाद घर लौटा था। पत्नी आग्रह से पुकारने लगी; किन्तु पति ने किया कुछ नहीं न हिला न डुला। केवल पूछा—"मालिन को पुलिस क्यों लिये जा रही है?"

"रात को उसने चोरी की।"—कुसुम उपेक्षा से बोली।

"कौन सी चीज?"

"फल; किन्तु तुम जाते कहाँ हो!"

"वहीं।"

"कहाँ?"

"मालिन को छुड़ाने।"

क्रोध में कुसुम अपनी सत्ता तक को खो बैठी—"ऐसा नहीं हो सकता। मेरी आज्ञा पर किसी की जोर-जबरदस्ती नहीं चल सकती। मेरे आत्मसम्मान का जहाँ ऐसा अपमान हो, वहाँ मैं रह भी नहीं सकती।"

परेश लौटकर खड़ा हो गया—"तुम्हारे कार्य, आज्ञा, पर तो मैं कभी हाथ नहीं उठाता कुसुम।"

"फिर आज तुम यह क्या करने जा रहे हो? पूरे ग्राम के सामने मेरा अपमान क्यों कर रहे हो?"

"केवल अपने सम्मान के लिए क्या एक दरिद्र परिवार की मृत्यु ही तुम्हारा काम है कुसुम? मैं चला।"

"तो मैं भी चुप न रहूँगी, पहले उसे निकालूँगी, तब मैं निकलूँगी। अपने हाथों उसका सामान निकाल कर बाहर फेंकूँगी।"

वह हँसा, खिन्न, स्निग्ध, उदार हँसी—"जाओ अपनी आँखों से उस दृश्य को देखो। उसके बाद भी यदि उसका सामान फेंक सको तो मैं निषेध न करूँगा।" किन्तु इन बातों को सुनता कौन? चप्पल घसीटती तब तक कुसुम उद्यान-पथ पर पहुँच गई थी। पल-भर, एक पल परेश चुपचाप खड़ा रहा फिर गाड़ी पर बैठकर कोतवाली की ओर चल पड़ा।

प्रलयकाल की क्रुद्ध आँधी-सी कुसुम माली के घर के बीच में आकर खड़ी हो गई—"निकलो दूर हो यहाँ से। किन्तु—किन्तु यह क्या? आँखों के सामने मौत के इस नग्न रथ को, दरिद्रता के अस्थि-पञ्जर को, भूख के इस करुण चीत्कार को किसने रख दिया? सुख, ऐश्वर्य, विलासिता के भीतर ऐसे कुत्सित दारिद्रय का जन्म किसने और कब दे दिया?

कुसुम सिहर तो जरूर उठी; किन्तु उसके बाद भी उसके स्वर में परिहास, अविश्वास मूर्त्तिवान हो उठा। फिर यह तो वही जाने यह परिहास किस के लिए था—अपने-आपके लिए, उस दरिद्रता के लिए अथवा अपनी ही पराजय के विरुद्ध।

"यह सब बनावटी है। चलो—घर खाली करो। हाँ, अभी।" वह कोने की ओर बढ़ी। फटे, मैले चीथड़े पर एक हाड़ का ढाँचा पड़ा था, उसकी कमर में एक लँगोटी बँधी थी और उन हड्डियों पर चमड़े का सिकुड़ा शिथिल आवरण काला पड़ गया था। मुद्रित नेत्र इञ्च-भर गड्ढे में घुस गये थे; हृदय-स्पन्दन शायद था भी नहीं। यदि था भी, तो बहुत धीमा, दाँत बाहर निकल आये थे। कुसुम वहीं अचल हो रही। वह अवाक् थी—वस्त्र के नीचे माली ने इस हड्डी के ढाँचे को कैसे छिपाकर रखा था? बार-बार कुसुम सिहरने लगी, दारिद्र्य, अभाव ऐसा भयानक, भयावह, ऐसा कुत्सित! और वह इसी से परिचित होने के लिए ऐसी दोप-हरी में दौड़ी चली आई थी? वह विस्मय से स्तम्भित-सी विचार चली—ऐसे अभाव, दैन्य, क्षुधा को इन इनी गिनी हड्डियों के भीतर माली ने बन्द ही कैसे कर रखा था? उसने चकित, भीत नेत्र से एक बार दूसरी ओर देखा—नग्न बालक-बालिका निर्जीव-से पड़े थे। जो अभी तक एक-एक बार क्षुधा से चिल्ला रहे थे; अब वे सब चुप थे और मारे भय के उसकी ओर देखते हुए मिट्टी के घड़े और चीथड़ों के नीचे छिप रहे थे। सब से छोटा बालक केवल "अम्मा-अम्मा" कहकर चिल्ला रहा था।

कुसुम विवर्ण हो उठी। दोनों हाथों से मुँह छिपाकर

दूसरे ही पल वह भागी। जेठानी पुकारती ही रह गई। उसने कमरे का द्वार भीतर से बन्द कर लिया।

न किन्तु न परन्तु—अब तो जीवन से समझौता करने की ज़रूरत उसे पड़ गई थी।

(उषादेवी मित्रा)

प्रतिज्ञा

जीवन-ज्योति का निर्वाण ! कहाँ है ? नैराश्य की कालिमा मयी कन्दरा में, अथवा आनन्द के आलोकमय प्रासाद में ? कल्पना और चिन्ता ! इसका समुचित उत्तर क्या तुम दोनों की सर्वत्र-विहारिणी बुद्धि के भी परे है ?

उत्तर हो, या न हो, कर्त्तव्य के कठोर पथ से भ्रष्ट हो जाने पर जीवन-ज्योति अवश्य ही रसातल की अपमान-कन्दरा में चिरकाल के लिए पतित हो जायगी, भविष्य-गगन के बाल-सूर्य की उज्ज्वल आभा अज्ञान-सिन्धु के भयङ्कर वक्षस्थल में निश्चय ही विलीन हो जायगी। ऐसे समय जीवन-मरण की विकट समस्या के समुपस्थित होने पर कौन-से मार्ग का अवलम्बन करना होगा ? विश्वनाथ के विमल हृदय में इस क्रान्तिकारी प्रश्न ने बड़ी हलचल मचा दी है।

विश्वनाथ की अवस्था २० वर्ष की है। बी० ए० पास होने पर भी उन्हें ग्राम्य जीवन और ग्रामीण वेश ही विशेष प्रिय है। जिन्हें अँगरेजी पढ़कर अपने देश और वेश से घृणा हो जाती है, शिक्षा के सर्वोच्च सोपान पर पहुँचकर भी जिनमें करुणा और विनय का एकान्त अभाव तथा स्वार्थ और अहङ्कार का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है, जो देश के सर्वस्व का उपभोग करते हुए भी उसके साथ—अपने जन्मदाता के साथ—विश्वासघात करने में कण-मात्र भी कुण्ठित नहीं होते, जो देश की दरिद्र सन्तान से—अन्न-दात्री कृषक-मण्डली से—एक

बार हँसकर बोलने में भी अपनी निःसार मान-मर्यादा के अपमान की कल्पना करते हैं, उनके—विदेशी सभ्यता के तीव्र आलोक में विचरने वाले ममताशून्य अहम्मानियों के विश्वनाथ अपवाद-स्वरूप थे।

विश्वनाथ जिस ग्राम में रहते थे, वह उन्हीं की जिमीदारी में था। विश्वनाथ केवल अपने माता-पिता के ही स्नेह-भाजन हों, यह बात न थी। गाँव के छोटे-बड़े, धनी-मानी, राव-रंक सभी विश्वनाथ से समान स्नेह करते थे। विश्वनाथ की करुणालहरी भी अनवरुद्ध गति से प्रवाहित होकर सबको समान भाव से शीतल करती थी। गाँव की युवतियाँ उन्हें भाई कहती थीं, गाँव के कपटशून्य युवक उनसे सहोदर - समान स्नेह करते, गाँव की प्रौढ़ा उन्हें अपनी सन्तान के समान रखतीं और गाँव के बच्चे-बूढ़े उन्हें अपनी आत्मा का दूसरा स्वरूप समझते। प्रकृति के उस परम रम्य विहार-वन में विश्वनाथ इस प्रश्न की समुचित समस्या हल करने के लिए व्याकुल हो उठे।

तर्क! वक्र गति का परित्याग कर दो। नियम! अपवाद का अनादर कर दो। न्याय! विकार का बहिष्कार कर दो। और सत्य! तुम अपने ध्रुव आलोकमय रूप में दर्शन देकर विश्वनाथ के हृदय-गगन की इस सन्देह-कालिमा को दूर कर दो।

२

इस ब्रह्माण्ड-व्यापी भू-कम्प के समय भारतवर्ष अपने पैरों पर खड़ा रह सकेगा या नहीं, इस विषय पर विचार करते-करते विश्वनाथ ग्राम-वाहिनी कल्लोलिनी के तट पर घूम रहे हैं।

दिननाथ अपनी अरुण किरणों से सरोजिनी के म्लान होते हुए मुख का चुम्बन करके अपनी रसातल यात्रा में अग्रसर हो रहे हैं। मध्य-गगन में अष्टमी का अर्धचन्द्र भुवन भास्कर के असीम राज्य पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए विशेष समुत्सुक हो रहा है।

विश्वनाथ आप-ही-आप कहने लगे—कैसी भयंकर परिस्थिति है! कहाँ है देवताओं के ऐश्वर्य को पराजित करने वाली वह विभूति? स्वप्न हो गई। ये सब इतिहास लेष बातें हैं। देखता हूँ, कमलदल-विहारिणी भगवती कमला अपने कर-सरोज के मुरझाये हुए एक पल्लव-शेष सरोज को अपनी अश्रुधारा से सिक्त कर रही हैं; देवी शारदा भग्नावशेष भवन में बैठकर अपनी भुवन-मोहनी वीणा के टूटे हुए तारों को मिलाकर, मर्मान्तक गान गा रही हैं। चली गई सब सम्पदा! कहाँ है वह विश्व-मोहन ऐश्वर्य? विधि का कैसा भयानक विधान है? भाग्य-नायक का कैसा मर्मभेदी दुःखान्त दृश्य है? आनन्द का वह जयोल्लास मानो अनन्त गगन में विलीन हो गया; ऐश्वर्य की वह आभा मानो अनन्त तिमिर के उदर में शेष हो गई; विभूति मानो श्मशान-भूमि में भूति शेष रह गई!—कहते-कहते विश्वनाथ के लोचन-युगल से अश्रुधारा बहने लगी। हृदय में जब भयंकर उत्ताप होता है, कल्पना जब केवल प्रज्ज्वलित प्रदेश में परिभ्रमण करती है, मस्तिष्क जब चिता-भूमि की भाँति, धधकते हुये विचारों का केन्द्र बन जाता है, तब नयनों की अश्रुधारा क्या इस भयंकर अग्नि-त्रयी को शान्त करने में समर्थ होती है?

विश्वनाथ अश्रु-प्रवाह को पोंछकर पुनः कहने लगे—सुनता हूँ विधवाओं का मर्म-भेदी आर्तनाद, शुष्कस्तनी माताओं के

मृतप्राय बालकों का भयंकर चीत्कार, दरिद्रता का भीषण अट्टहास, और हाय! इन सब के बीच में सुनता हूँ सर्व-नाशिनी ईर्षा की पैशाचिक हँसी! लज्जा आज शीर्ण-वस्त्रावृता है, शील विकल हो रहा है, आचार अभाव के कठोर अत्याचार से मृतप्राय हो रहा है और प्रेम चिन्ता की भयंकर चिता में दग्ध होकर भस्मावशेष होना चाहता है। हा दैव!

विश्वनाथ अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। जब दुःख-सिन्धु अपनी मर्यादा का लल्लंघन करना चाहता है, प्रकाण्ड भू-कम्प का आघात जब धैर्य-शैल को रसातल के गर्भ में ले जाने का उपक्रम कर रहा है, प्रबल पयोद-पुंज अपनी भयंकर गर्जना में जब निर्बल के मन्द चीत्कार को विलीन कर लेना चाहता है, तब प्रलय में—जगत् के भीषण परिवर्तन में—विशेष विलम्ब नहीं है।

३

रमानाथ और विश्वनाथ बाल्य-बन्धु हैं। कल्लोलिनी तट पर, निकुंज वन में, दोनों ने अनेक बार अपने-अपने सरल हृदय निश्छल भावों को एक दूसरे के सम्मुख प्रकट किया है। एक ही भूमि पर दोनों ने सूर्य की प्रथम किरणों को देखा, एक ही भूमि पर दोनों ने मनोहर बाल्यजीवन को समाप्त करके यौवन में पदार्पण किया, एक ही कॉलेज में अध्ययन करके दोनों ने बी०ए० की उपाधि प्राप्त की और एक ही मन-प्राण होकर दोनों ने अपने-अपने जीवन की अमूल्य मणि को एक ही प्रेम-सूत्र में पिरोया। रमानाथ और विश्वनाथ का यह देव-दुर्लभ प्रगाढ़ प्रेम इस कुत्सित विश्व की कपट-नाट्यशाला में, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के आदर्श चरित्र की भाँति, एक स्वर्गीय दृश्य है।

विश्वनाथ आज रमानाथ के बिना ही कल्लोलिनी-तट पर विचरण करने आए थे। यह रमानाथ के लिए प्रथम आश्चर्य था। अपने अतीत जीवन में रमानाथ ने विश्वनाथ के बिना और विश्वनाथ ने रमानाथ के बिना कोई भी कार्य नहीं किया था। नित्य ही दोनों एक स्थान पर भोजन करते; नित्य ही दोनों एक ही कक्षा में अपने-अपने अध्ययन में प्रवृत्त होते। आज विश्वनाथ रमानाथ को छोड़कर, अपने चिन्ता-दग्ध हृदय को लेकर, कल्लोलिनी-तट पर कल्पना की सहायता से माता का करुणा-पूर्ण मुख-मण्डल देखते-देखते विचरण कर रहे हैं। यह विश्वनाथ और रमानाथ के प्रेम इतिहास का एक नूतन अध्याय है।

जिस समय विश्वनाथ अपनी कक्षा से बाहर निकले थे उस समय रमानाथ सो रहे थे। उन्हें निद्रादेवी की सर्व-सन्ताप-हारिणी गोद में छोड़कर विश्नाथ चले आए थे। रमानाथ ने जागकर देखा कि विश्वनाथ नहीं है। आश्चर्य और आवेग के साथ, सन्देह और संशय के साथ, रमानाथ शीघ्रता-पूर्वक कल्लोलिनी-तट के अभिमुख चल दिये।

जिस स्थल पर प्रेम की दो शीतल धाराएँ मिलती हैं, उस स्थान को भगवान् की अदृश्य करुणा-लहरी प्रयाग-तीर्थ में परिणत करती है। इस पवित्र त्रिवेणी-संगम पर स्नान करने वाले, लोग दुर्लभ परमपद को प्राप्त कर, विश्व को—सन्तप्त संसार को—विश्व प्रेम का पवित्र पाठ पढ़ाते हैं। रमानाथ और विश्वनाथ की सृष्टि क्या भगवान् ने इसी उद्देश्य से नहीं की?

रमानाथ ने देखा, विश्वनाथ की मुख-श्री दिनकर-किरण-सन्तप्त सुमन की भाँति, मलिन है, स्निग्ध करुणा-पूर्ण लोचन

युगल जल-पूर्ण हैं और कुसुम-कोमल शरीर शिथिल हो रहा है। रमानाथ ने आवेग से उसका हाथ पकड़कर कहा—विश्वनाथ !

विश्वनाथ ने चौंककर कहा—कौन ? रमानाथ !

४

पतंग-प्रिया पद्मिनी, प्रोषितपतिका की भाँति, श्री-विहीन होकर संकुचित हो गई। पक्षिकुल-संरक्षक-विहीन गायक-समाज की भाँति मूक हो गया। प्रकृति, परिश्रम के विश्राम की भाँति स्तब्ध हो गई। गगनांगण में विहार करता हुआ चन्द्रमा अपनी शुभ्र चन्द्रिका की शीतल धारा से धरणी देवी के दिन-कर-करतप्त कलेवर का सिंचन करने लगा। कुमुदिनी प्रिय का चुम्बन पाकर प्रफुल्लित हो गई। औषधियाँ अनुकूल नायक को प्राप्त करके, स्नेह के आवेश में चमकने लगीं। रमानाथ ने कहा—विश्वनाथ, अपनी इस तीव्र व्यथा की बात मुझ से न कह कर तुमने मेरे साथ कैसा अन्याय किया है, सो तुम जानते हो ?

विश्वनाथ ने दुःखित स्वर में कहा—भैया, मैं सदा का दोषी हूँ। तुम्हारे प्रेम का मैंने अनादर किया हो, यह बात नहीं है। तुम से मैंने कौन-सा रहस्य छिपाया है ? वास्तव में मेरे इस जीवन का समस्त इतिहास तो तुम्हारे हृदय की प्रेम-पुस्तक में लिखा हुआ है। भैया, मैं समझता था कि इस विश्व में सहानुभूति और करुणा की शीतल तरंगिनी अनवरुद्ध गति से बहती है; किन्तु नहीं, अब देखता हूँ कि प्रबल अत्याचार का प्रकाण्ड पर्वत, द्वेष की कठोर भित्ति, स्वार्थ-प्रवृत्ति का भीषण पाषाण-समूह, एकमत होकर, पग-पग पर मही-तल के हृदय-तल को शीतल करने वाली इस निर्झरिणी के मार्ग

का अवरोध कर रहे हैं। भारत-भूमि निर्बलों के रक्त से लाल हो रही है। हिमाचल की कन्दराएँ निरीह बालक-बालिकाओं की क्रन्दन-ध्वनि से परिपूर्ण हो रही हैं। भारतीय गगन-मण्डल अबलाओं की रोदन-ध्वनि से विदीर्ण हो रहा है। बोलो रमानाथ; विश्वेश्वर का सिंहासन फिर कब डोलेगा?

कहते-कहते विश्वनाथ फिर अधीर हो उठे। रमानाथ ने भी इस बार आवेश के साथ उत्तर दिया—डोलेगा! अवश्य डोलेगा! क्यों न डोलेगा? किन्तु भाई, जब तक हमारे ही हृदय का करुणा-सिंहासन अचल भाव में स्थित रहेगा, जब तक हमारा रक्त धमनी में जल होकर बहता रहेगा, जब तक समस्त भारत एक मन, एक प्राण होकर एक ही उद्देश्य की ओर प्रभावित नहीं होगा, जब तक अकर्मण्य बनकर केवल कल्पना-द्वारा ही भारतवासी, भगवान् की करुणा को पुकारते हुए भारत के सौभाग्य को उज्वल करने की व्यर्थ चेष्टा में प्रवृत्त होते रहेंगे, तब तक भगवान् का सिंहासन कदापि न डोलेगा। शैतान के वीभत्स हास्य में, कल्पना गम्भीर गह्वर में, भारत की प्रार्थना–कर्म-हीन विनय–विलुप्त हो जायगी।

विश्वनाथ ने कुछ शान्त होकर कहा—कर्म-हीन विनय—निश्चेष्ट प्रार्थना—करुणामय भगवान् के कर्ण-कुहर में कदापि प्रवेश न करेगी। भारतवर्ष को इसी कर्म-क्षेत्र में लाने के लिए मैं उद्विग्न हो रहा हूँ। सोचता हूँ, यदि इस सीमाबद्ध बुद्धि का, इसी कर्म-क्षेत्र में, भारतवासियों को कर्मण्य बनाने के पुण्य प्रयास में, शिव और शैतान के भयंकर संग्राम में, मातृ-वेदी पर बलिदान हो जाय, तो इस से बढ़कर और क्या है!

रमानाथ ने आग्रहपूर्वक कहा—सत्य कहते हो भैया! तुम्हारी आकांक्षा अभिनन्दनीय है। हो; इस बलिदान का फल

ध्रुव विजय है; हृदय का तप्त शोणित—प्रेम का पवित्र पीयूष-प्रवाह—अक्षय ज्योति को प्राप्त करने का अव्यर्थ साधन है।

विश्वनाथ ने उत्सुकता से पूछा—"रमानाथ, बता सकते हो, इस महान् यज्ञ के अनुष्ठान के लिए क्या करना होगा?"

इसी समय निकुञ्ज की दूसरी ओर से एक नवयुवक संन्यासी ने गम्भीर ध्वनि में कहा—'त्याग।'

५

रमानाथ और विश्वनाथ चौंक उठे। उन्होंने देखा, एक शतमन्यु संन्यासी खड़ा है। मुख पर अपूर्व तेज है, शरीर अत्यन्त सुन्दर एवं गठा हुआ है। एक हाथ में त्रिशूल है, दूसरे में भिक्षा-पात्र। संन्यासी ने कहा—बन्धु-द्वय, तुम दोनों की बातें सुनकर मुझे परम सुख प्राप्त हुआ है। चलो, संन्यासी की कुटी को पवित्र करो।

रमानाथ और विश्वनाथ ने बद्धाञ्जलि प्रणाम किया। संन्यासी ने ईषत हास्य के साथ कहा—'विजय हो।'

रमानाथ और विश्वनाथ संन्यासी के पीछे-पीछे चल दिए। ग्राम-विहारिणी सरिता एक सुन्दर वन में प्रवेश करती है। वास्तव में वह एक विस्तृत वन के मध्य ही में होकर, मधुर कलकल ध्वनि करती हुई, अभिसारिका की भाँति, सिन्धु-पति की ओर अग्रसर होती है। प्रकृति की उसी विहार-स्थली में सरोजिनी-शोभित सरिता के सुरम्य तट पर, संन्यासी की लता-पत्रादि-वेष्टित स्वनिर्मित कुटी है। संन्यासी की आज्ञा पाकर विश्वनाथ और रमानाथ, कुटी के बाहर ही, चन्द्रिका-चर्चित दूर्वा के कोमल आस्तरण पर बैठ गए। संन्यासी भी उनके सम्मुख बैठ गया।

सन्यासी ने कहा—युगल बन्धु, जानते हो तुम्हारा कर्म-क्षेत्र दुग्ध-फेन-सम कोमल शय्या नहीं; किन्तु कण्टकाकीर्ण दुस्तर मार्ग है? विश्व के समस्त काल्पनिक बन्धनों को काट-कर सब को एक प्रेम-सूत्र में गूँथना होगा। मातृ-ऋण कितना बड़ा है, सो तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं। इसी महान् ऋण से अऋण होने के लिए, दुःख की कठोर शृंखला में बँधी हुई अपनी 'स्वर्गादपि गरीयसी' जन्मभूमि को सुखी करने के लिए, तुम्हें संसार के समस्त सुख-भोग को तिलाञ्जलि देनी होगी। आवश्यकता पड़ने पर जीवन का भी बलिदान करना होगा।

विश्वनाथ ने उत्साह पूर्वक कहा—भगवन्, चराचरेश्वरी भगवती कल्याण-सुन्दरी से यही विनय है कि मैं वार-वार जन्म लेकर मातृ-वेदी पर बलिदान हो जाऊँ। माता के चरण-तल में लोचन बिछा दूँ, यही हृदय की आकांक्षा है। हृदय का उत्तप्त शोणित देकर भगवान्! मातृ-मुख पर मधुर मुस-कान देख सकूँ—ऐसा वर दीजिए। जीवन की साध यही; चिर-पालित आशा का पुरस्कार यही है।

रमानाथ ने आवेश में कहा—पूज्यवर, देखना चाहता हूँ, माता की उस मधुर मुसकान को, जिसे देखकर विश्वेश्वर भी विस्मित और विमोहित हो गए थे। देखना चाहता हूँ, हिमा-चल के तुषार-मण्डित सुवर्ण-शृंङ्ग पर माता की फहराती हुई विजय-वैजयन्ती को। सुनना चाहता हूँ, सौख्य का वह श्रुति-मधुर कलकल-नाद और भेंट में देना चाहता हूँ यह पंजर-बद्ध हृदय।

सुनते-सुनते संन्यासी का मुख देदीप्यमान हो गया। उन युगल बन्धु की आवेश-पूर्ण वाणी सुनकर संन्यासी का कले-वर रोमाञ्चित हो गया। संन्यासी ने आग्रह तथा आवेश के

साथ कहा—आओ प्रिय बन्धु-द्वय, मातृ दर्शन करें।

६

युवक संन्यासी के साथ विश्वनाथ और रमानाथ ने कुटी के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करते ही विश्वनाथ और रमानाथ ने जो अनुपम दृश्य देखा, उसे देखकर वे एकदम ही विमुग्ध हो गए। उन्होंने देखा, अनन्त-विभूतिमयी, परम लावण्यमयी, माता की करुणा-मूर्ति को! घृत-दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में अपनी स्निग्ध आभा को मिलाकर माता का सौम्य मुख-मण्डल उन तीनों पर करुणा की अविरल धारा बरसाने लगा।

माता का योगिनी-वेश था। वह सौम्य तेज से परिपूर्ण कलेवर गैरिक वस्त्र से आच्छादित था। एक हाथ में था कमल, दूसरे में विजय-शंख, तीसरे में मनोहर वीणा और चौथे में चमचमाता हुआ त्रिशूल! मुख पर हास्य, लोचन में करुणा, ललाट पर तेज। आज भगवती मानो साधना-रूप से प्रकट हुई थीं।

विश्वनाथ, रमानाथ और संन्यासी ने माता को साष्टांग प्रणाम किया। प्रतिमा मानो, अपनी स्वाभाविक हँसी के द्वारा, आशीर्वाद लहरी से उन तीनों को सिक्त करने लगी।

संन्यासी कोकिल-कण्ठ से गाने लगा। हृदय के आवेश में विश्वनाथ और रमानाथ भी संन्यासी के स्वर में स्वर मिला कर गाने लगे। मातृ-प्रतिमा मन्द हास्य करती हुई सुनने लगी—

गान

जयति जय जननी!

जीवन-मूरि ज्योति लोचन की अरि-कुल सकल प्रमथनी!
नित पयोधि परसत पद-पंकज, पुण्य-पियूष-प्रस्रवनी!

वारत तन, मन, धन, जीवन, जीवन-पाप-प्रशमनी !
माँगत नित 'हृदयेश' चरण रति, मति-गति मो-मन बसनी !

गान समाप्त होने के बाद संन्यासी ने कहा—बन्धु-द्वय मातृ-चरण का स्पर्श करके प्रतिज्ञा करो कि इस माता की उन्नति के लिए जीवनदान देकर चेष्टा करने में भी पराङ्मुख नहीं होंगे।

विश्वनाथ और रमानाथ ने मातृ-चरण छूकर प्रतिज्ञा की। उसी समय माता के कर-सरोजों से विश्वनाथ और रमानाथ के गले में दो मालायें गिर पड़ीं। माता ने मानों विजयमाला पहना कर कहा—'विजय हो।'

× × × ×

उसी रात्रि को, उसी पुण्य अवसर में, विश्वनाथ और रमानाथ ने अपने कर्त्तव्य मार्ग को ठीक-ठीक जान लिया। संसार का निःसार मोह-बन्धन काट विश्व-प्रेम के अनन्त आश्रय को प्राप्त करके, प्रकृति के पुण्य आशीर्वाद को अपने शीश पर धारण करके, ऋषि-पुञ्ज के मन्त्र पूत-जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प-वृष्टि से, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश-सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्त्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए। चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—शुभास्ते पंथानः।

कल्लोलिनी ने कलकल-ध्वनि में कहा—शुभास्ते पंथानः।
अचल ने अचल भाव में कहा—शुभास्ते पंथानः।

(चंडीप्रसाद 'हृदयेश')

कः पन्थाः

शहर के बड़े लोगों ने एक क्लब खोल रक्खा है, 'द वीज' (The we's)। उस क्लब के सदस्य गिने-चुने हैं। इस शान के क्लब मैंने अमेरिका और विलायतों में देखे हैं, यहाँ तो दूसरा नहीं देखा। लाचार जब भाषण देने मैं पहली बार वहाँ गया, तब लालचन्द से मेरा परिचय हुआ। शहर के सबसे बड़े जौहरी का वह सबसे छोटा पुत्र था।

व्याख्यान समाप्त होगया और क्लब के सदस्यों से परिचय लाभ कर जब मैं चलने लगा, तब क्लब के मन्त्री और लगभग अन्य सभी सदस्य हाल के द्वार तक मुझे पहुँचाने आये। उस समय एक व्यक्ति आगे बढ़कर, खड़ी हुई मोटर-कार का दरवाजा खोल, विनीत भाव से अभिवादन-पूर्वक मेरे समक्ष आ खड़ा हुआ। निर्दोष उज्ज्वल खादी के वस्त्र पहने, विजय की मूर्त्ति बना, इकहरे बदन का वह बाईस-चौबीस वर्ष का युवा बालक मुझे बड़ा भला मालूम हुआ।

क्लब के मन्त्री ने अँगरेजी में कहा—मैं आपका परिचय तो करा ही न सका। काम में आगे बढ़कर नाम के समय आप सदा पीछे रहते हैं। यहाँ के मशहूर""जौहरी आपके पिता हैं। आप हमारे क्लब के खजांची हैं, मिस्टर लालचन्द जौहरी।

मैंने कहा—मैं बहुत खुश हूँ।

लालचन्द अभिवादन में तनिक झुका। मेरे साथ आते हुए मन्त्री से उसने शुद्ध अँगरेजी में कहा—"ओह, तुम कष्ट न करो। आपको मैं ही स्थान पर पहुँचा दूँगा।"

मैं मोटर में बैठा और मेरे पीछे आकर लालचन्द मेरे बराबर बैठ गया गाड़ी रोल्स रॉयस थी और जिस स्वाभाविकता के साथ उसने शॉफर को अमुक ओर चलने के लिए कहा, उससे स्पष्ट था कि लालचन्द गाड़ी का मालिक है।

गाड़ी चली और कुछ देर लालचन्द चुप बैठा रहा। मुझे प्रतीत हो रहा था कि चुप ही बैठे रहने के लिए शायद उसने मन्त्री को कष्ट न करने का परामर्श नहीं दिया है। वह कुछ कहना चाहता है; लेकिन कदाचित् उसे राह नहीं सूझ रही है।

तब मैंने कहा—तो आप जौहरी हैं। जवाहरात का काम भी करते हैं?

"जी हाँ, कुछ करता भी हूँ। मुझे लोगों ने यों ही क्लब का खजांची चुन लिया है।"—स्पष्ट अँगरेजी में उसने कहा और कहता रहा—"आपकी वक्तृता से मैं बहुत प्रभावित हुआ। मरी बातों के लिये क्या आप क्षमा करेंगे? आपने भाषण में इंजील के उस वाक्य को दुहराया था, जिसमें लिखा है कि हाथी का सुई के छेद से निकलना आसान हो सकता है; पर धन वाले के लिये ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाना उससे भी कठिन है। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या वह ठीक है?"

मैंने उस लालचन्द नाम के बालक युवक की ओर देखा। दिखाई दिया, उसके मुख पर जिज्ञासा है। वह जैसे कृपा का प्रार्थी है। मानो वह अभी कातर हो आयगा। इंजील के इस वाक्य के प्रति जैसे वह किसी प्रकार निश्चिन्त नहीं हो पाता है। मानो स्वर्ग-राज्य में उसी के प्रवेश अथवा अप्रवेश का प्रश्न है।

मेरे मन में उस बालक के प्रति करुणा हुई। मैंने पूछा—"तुम्हारे प्रश्न का क्या आशय है?"

उसने उसी शुद्ध और प्रभावोत्पादक स्वर में कहा—"यही कि मैं जानना चाहता हूँ कि इंजील की इस वाणी का क्या वही अभिप्राय है जो उसके शब्दों का अर्थ होता है?"

हमारी बातें अँगरेजी में हो रही थीं। मैंने हिन्दी में कहा—"मेरे भाई उस वाक्य से क्या तुम्हें यह अनिवार्य रूप से स्मरण हो आता है कि तुम धनशाली हो? मैं पूछ सकता हूँ कि यह गाड़ी तुम्हारी है?"

"जी हाँ, यह गाड़ी मुझे अपनी ही कहनी होगी। मेरे मन को शान्ति नहीं है। इंजील का वह कथन मुझे अपने लिए अभिशाप मालूम होता है; किन्तु मुझे सन्देह है कि उस जैसे पवित्र ग्रन्थ में किसी श्रद्धालु के लिए शाप हो सकता है। मैं जानना चाहता हूँ कि तब क्या वह वाक्य ज्यों-का-त्यों सत्य नहीं है?"

मैंने फिर सचिंचतापूर्वक लालचन्द के मुख की ओर देखा, मानो वह त्रस्त है। कुछ बराबर दब रहा है।

"क्या आप कहेंगे कि उसका साधारण शब्दार्थ से कुछ भिन्न है?"

मैंने पूछा—"तुम ईसाई तो नहीं हो न?"

"नहीं।"

"तब कौन धर्मावलम्बी हो?"

"मैं जैन हूँ। इससे आप असन्तुष्ट तो नहीं हैं कि मैं जैन हूँ?" मैंने कहा—मेरे भाई, तुम कैसी बात कहते हो; लेकिन जैन होकर तुमको बाइबिल का एक वाक्यांश, क्यों इस

प्रकार सताता है। जैन-धर्म भी क्या ऐश्वर्य को इसी प्रकार अभिशप्त ठहराता है ?

लालचन्द ने कहा—जैन धर्म में सर्वोपरि त्याग की महिमा है। सब कुछ तजना होगा। निर्ग्रन्थ हो जाना होगा। परिग्रह की ओर से दिगम्बर। किन्तु, वैभव दुष्कृति का लक्षण है, ऐसा वहाँ कथन नहीं है। प्रत्युत वह तो पुण्य का फल ही बताया गया है।

मैंने कहा—तब तुम क्यों चिन्तित होते हो ?

लालचन्द ने कहा—बहुत इच्छा-पूर्वक तो चिन्तित नहीं होता हूँ। क्या चिन्ता में कोई सुख है ? किन्तु बाइबिल की वह पंक्ति ता मेरे मन को लगती ही है। टाले से टलती नहीं। आपकी वक्तृता सुनकर मैंने सोच लिया; आपसे मैं अपना प्रश्न पूछ लूँगा।

हम लोग चले जा रहे थे। मेरा स्थान अब दूर न था। मुझे लालचन्द का प्रश्न शास्त्रीय प्रश्न की भाँति न लगा। मुझे प्रतीत हुआ कि इस बात को जीवित समस्या बनाकर यह लालचन्द अपने लिए मानसिक क्लेश उपस्थित कर सकता है।

मैंने कहा—निस्सन्देह, बाइबिल की बात झूठ नहीं है; किन्तु ऐसा इसलिए नहीं कि जड़ धन-सम्पत्ति बहुत बड़ी चीज है, प्रत्युत इसलिए है कि मनुष्य अति क्षुद्र प्राणी है। धन-वैभव क्या इतनी बड़ी वस्तु है कि परम सत्य को और स्वर्ग के राज्य को अपनी ओट में ढक ले ? अवश्यमेव नहीं है, पर यह बात तो इसलिये कही गई है कि मनुष्य इतना दुर्बल और दुर्बल होने के कारण इतना अहंकारी है कि दुनिया के धन-वैभव

से अपनी दृष्टि को जकड़ लेता है। समझता है, वह अपने को समर्थ बना रहा है; किन्तु इस प्रकार धन मद का सहारा लेकर वह अपने को पामर ही बनाता है,—अपने चारों ओर मान-मर्यादा की लकीरें खींचकर अपने को बन्द और संकीर्ण ही बनाता है। धन-सम्पत्ति में भी तो परम पिता का प्रयोजन है; किन्तु अति दीन, अति क्षुद्र मानव उससे अपने को बाँध लेता है। मेरे भाई इञ्जील का कथन मनुष्य की इसी क्षुद्रता के कारण है।

लालचन्द के समक्ष जैसे लालच का द्वार खुला; किन्तु वह उसे बन्द रखना चाहता है। उसने आविष्ट स्वर में कहा—तो स्वर्ग का राज्य धनिक को अप्राप्य नहीं है?

मैंने कहा—जिस प्रकार धनिक को यह अप्राप्य नहीं है कि वह अपने को परम-पिता का भिखारी और मनुष्य का सेवक समझे, उसी प्रकार उसे स्वर्ग और शान्ति भी अप्राप्य नहीं है।

लालचन्द ने पूछा—तो मैं यह मोटर रक्खे रह सकता हूँ?

मैंने कहा—दे भी डाल सकते हो, और रक्खे भी रह सकते हो। देकर भी स्वर्ग तुम्हें अप्राप्य हो सकता है, और उसे रख कर भी तुम स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हो। मेरे बच्चे, तुमको क्या क्लेश है?

मेरा स्थान पास आ गया था। लालचन्द ने कहा—क्या कभी आपकी सेवा में आऊ, तो आपका बहुत हर्ज होगा?

मैंने—नहीं-नहीं, मुझे बहुत खुशी होगी।

वह मेरे घर के दरवाज़े तक मुझे पहुँचाने आया। उसने मुझे प्रणाम किया। बहुत धीमे-धीमे, मानो बोलने में उसे कष्ट

होता हो, उसने कहा—मैं आपका बहुत ऋणी हूँ ; लेकिन मैं आपका बालक हूँ।

मैंने कहा—मैं तुम्हें जानकर बहुत प्रसन्न हुआ।

× × × ×

अन्त में वह भक्ति-पूर्वक मुझे प्रणाम कर चला गया।—

उसके बाद लालचन्द मुझे कहाँ मिला ? हाँ, एक आध पार्टी में जहाँ मैं विवशतः ले जाया गया था, वह दिखाई दिया। सदा वही उज्ज्वल खद्दर का लिबास होता। चिन्तित मुस्कराहट से मुस्कराता वही मुख और हल्की समीर की भाँति तरल शिष्ट व्यवहार। मैंने देखा, विनय-नम्र, संकोच के कारण बातचीत में कहीं-कहीं वह अब हकला उठता है। वाक्यों की स्वच्छन्दता और प्रवाह में जैसे कुछ धीमापन आ गया है। शब्दों में सूक्ष्मता और निर्बलता आ गई है। शब्दों के पीछे संकल्प-शक्ति मानो धीमी होती जा रही है—मन की शंका गहरी उतरती और फैलती जाती है। मैंने कहा—कहो लालचन्द, अच्छे तो हो ?

उसने नमित मुस्कान के साथ कहा—आपकी कृपा से प्रसन्न हूँ।

मैंने मालूम किया कि पिछले दिनों अपनी जवाहरात की दुकान पर जाना उसने बहुत कम कर दिया है। अपने मत के मंतव्यों में पिछले दिनों उसने धार्मिक श्रद्धा प्राप्त की है। व्रत-उपवास करता है, दर्शन-पूजा करता है और यति-मुनियों की संगति-सेवा करता है। अपने धर्म के शास्त्र बाँचना उसने शुरू किया है। वह अपने को दुनियादारी से खींचकर जैसे संक्षिप्त बनाना चाह रहा है।

मैंने पूछा—कहो भाई, तुम्हारे क्लब के और सब लोग कुशल-पूर्वक तो हैं ?

उसने कहा—जहाँ तक मुझे ज्ञात है, सब आनन्द पूर्वक हैं।

मैंने पूछा—क्यों, क्या आजकल उन लोगों से मिलना नहीं होता ?

उसने कहा—उस क्लब से मेरा अब सम्बन्ध नहीं रहा।

मैंने आश्चर्य प्रकट किया और जानना चाहा कि ऐसी क्या बात हुई है।

मालूम हुआ, बात कोई विशेष नहीं हुई हैं। करोड़पति का पुत्र है इसीलिये तो वह क्लब का सदस्य था। निर्धन का पुत्र होने पर तो वह नियम-पूर्वक उस क्लब का सदस्य भी न हो सकता; इसलिए उसने वह क्लब छोड़ दिया है।

मैंने देखा लालचन्द पहले से कुछ पीला होगया है। उसने मुझसे क्षमा माँगी कि इच्छा करके भी वह मुझसे मिलने का अपना सौभाग्य न बना सका। उसने कहा, वह बड़ी उलझन में है और अवश्य मुझ से जल्दी ही मिलना चाहता है।

इसके बाद जब कभी मैंने उसे देखा, देखा कि उसी ओर बढ़ रहा है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और क्षीण से क्षीणतर होता जाता है। उसके चेहरे पर विमलता के साथ चिन्ता की छाप बढ़ती जाती है। चेहरा नुकीला होता जाता है, वाणी में अधिकाधिक संकोच आता जाता है। बात मुँह से मुश्किल से निकलती है। निकलती है तब मानो क्षमा-याचना करती हुई सङ्कल्प शून्य और संदिग्ध-सी बनी ध्वनि मानो कुहरे की भाँति उसके शब्दों को डसे रहती है।

मुझे मालूम हुआ, चार भाई उसके और हैं। वे सब हृष्ट-

-पुष्ट हैं, दुबला-पतला वही है। खद्दर भी घर भर में वही पहनता है। पढ़ा-लिखा सब भाइयों में वही ज्यादा है, बी०ए० पास है, और बुढ़िया माँ का वही सबसे प्यारा है।

इन पार्टियों में मुझे उसके भाई भी मिले। सबसे बड़े भाई अति सुन्दर, स्वस्थ पुरुष थे। चेहरा सुर्ख खिला रहता था। उनकी बात में जोर होता था और धमक। कुछ अजब रोब उनके व्यवहार में था। अँग्रेजी भाषा से उन्हें साधारण परिचय था; किन्तु ऊँची-से ऊँची सभा-समाज में वे विशिष्ट और मान्य पुरुष की भाँति गौरवशीलता के साथ व्यवहार करते थे। उनका बदन दोहरा था। बेफ़िक्री और विलास मानो उनके शरीर से विकीर्ण हो रहा था। उनकी अवस्था पैंतालीस के लगभग थी; पर वे पैंतीस के से दिखाई देते थे। पेरिस में पाँच सौ रुपये खर्च कर हवाई जहाज से उनके लिये पानों की एक डोली भेजी गई थी,—पान के वह ऐसे शौकीन थे। न्यूयार्क में तो पान पाने में और भी ज्यादा खर्च किया था। उनसे मिल कर व्यक्ति का सुखी न होना असम्भव था। कुलीनता उनके परिच्छद से और शालीनता उनके तमाम व्यक्तित्व से मानों फूटती रहती थी। अत्यन्त अनुग्रह पूर्ण प्रेम-भाव से वे सबसे मिलते थे। लालचन्द ने उनसे मेरा परिचय कराया। उनका नाम मानिकचन्द था।

लालचन्द की अनुपस्थिति में उन्होंने मुझसे कहा—स्वामी जी, इस लालचन्द को समझाइए न। काम-धंधा छोड़ कर जाने किस फेर में रहता है।

मैंने कहा—आप लोगों के कहने-सुनने का कुछ परिश्रम नहीं होता है क्या? यों तो लालचन्द बहुत समझदार है।

मानिकचन्द के ऊपर के ओठ में तनिक वक्र पड़ा। उन्होंने

कहा—समझ ही तो उसे खराब कर रही है। अपने अन्दर न समाय वह समझ बिगाड़ ही करती है। आप उससे कहिए अगर वह चाहे तो उसे अलग दूकान करा दी जाय। घर बीवी है, बाल-बच्चे हैं। अब समझ न आयगी, तो आगे क्या होगा?

मैंने कहा—ठीक तो है। मैं उससे कहूँगा कि भाई समझदार होकर समझदारी का रास्ता क्यों छोड़ते हो?

मानिकचन्द ने कहा—जाने यह कैसा लड़का है। हम नहीं चाहते कि वह दूकान में ही लगे। तबियत हो तो दुनिया की सैर करे। कमी तो उसके लिए है नहीं; लेकिन यह वैरागीपना, स्वामीजी, बड़ी बुरी बात है। एक आप हैं, अकेले हैं, पालने-पोसने को कोई साथ बँधा नहीं है; इसलिए आप स्वामी हों, तो हो भी सकते हैं। पर-उपकार ही अब आपके लिए काम है; लेकिन लालचन्द की ऐसी उमर भी नहीं है, हालत भी नहीं है।

मैं मानिकचन्द से मिल कर खुश हुआ।

और भाई भी मानिकचन्द की ही राय पर थे, और खुश थ। उन्हें अपने साथ कोई शिकायत नहीं थी। उन्हें अपने में कुछ ग़लत नहीं दिखाई देता था। मजे में रहते थे। चिन्ता विचार का अधिक परिग्रह नहीं रखते थे। वे लोग सब समाज में मान्य, कर्मशील, तत्पर आदमी थे। अधिक-से-अधिक यही तो कहा जा सकता था कि वे सदाचारी नहीं हैं; किन्तु उपपत्नियाँ हैं, अथवा प्रेमिकाएँ हैं, या वेश्यागमन के सम्बन्ध में दृढ़प्रतिज्ञ नहीं हैं, तो इससे उनके जीवन में क्या अक्षमता आती थी? वे सब-के-सब आत्मतुष्ट, स्वस्थ, प्रसन्न, मान्य, मिलनसार और मधुर-भाषी थे।

लालचन्द ने सबसे मुझे मिलाया। मैं मिलकर खुश हुआ।

× × × ×

इसके बाद एक दिन वह मेरे स्थान पर आया। उस समय किसी बड़ी दुविधा में मालूम होता था। वह मेरे साथ पुण्य और पाप की चर्चा चलाने आया था। वह जानना चाहता था कि क्या कृत्य पुण्य है, और क्या पाप? क्या वह जो बातें कर रहा है, उससे सूक्ष्म जीवों की हिंसा नहीं होती? क्या हिंसा पाप नहीं है? वह इस सम्बन्ध में भी अविश्वस्त मालूम होता था कि यहाँ बैठा जो मुझसे बात कर रहा है, वह पुण्य ही है पाप नहीं।

मुझे ज्ञात हुआ कि इधर वह प्रतिदिन तीन-तीन घण्टे मन्दिर में बैठता है। वह अत्यन्त सतर्क रहता है कि अशुभ भाव उसके मन में न आने पावें। वह पहले से और भी पीला हो गया था, और अधिक हकला कर बोलता था।

मैंने कहा—तुम्हें धर्म के बारे में इतने अणुवीक्षण की आवश्यकता नहीं। धार्मिक जीवन दिव्य जीवन है। दिव्य जीवन अल्पप्राण जीवन नहीं है। महाप्राणता वास्तविक तत्त्व है। पाप-पुण्य के विवेक की राह से मनुष्य अपना पोषण करता है। उस राह के बीच में होने का प्रयोजन यह है कि वह इतना पुष्ट बने कि भय की उसे आवश्यकता न रहे; इसलिए कृत्य के अन्दर पाप-पुण्य नहीं है, वरन् मनुष्य के भीतर की भीरुता और अनधिकारिता के कारण उसके लिए कुछ पुण्य है और कुछ विगर्हणीय पाप।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं लालचन्द की दृष्टि से निषिद्ध क्षेत्र पर जा रहा हूँ। मैंने कहा मेरे बच्चे, पाप-पुण्य की उलझन को और मत उलझाओ। मनुष्य को इष्ट तो वह

अवस्था है, जहाँ से पाप-पुण्य नीचे ही रह जाते हैं; लेकिन जीने को नीचे छोड़ने के लिए चढ़ना भी जीने से ही होगा। मैं तुमसे पूछता हूँ, क्या तुम मेरी बात मानोगे ?

लालचन्द का तनिक भी समाधान होता प्रतीत न होता था; किन्तु मुझे ज्ञात हुआ कि वह मुझसे कुछ-न-कुछ की तो अपेक्षा रखता है। मैंने कहा—लालचन्द, मैं तो यह देखता हूँ कि तुम अपने भाइयों के साथ उसी दूकान पर नहीं बैठ सकते, तो अलग व्यवसाय चलाओ। कुछ व्यवसाय तुम्हें अपने कन्धे पर उठाना ही चाहिए। आजीविका के लिए जो मनुष्य को कोई धन्धा करना जरूरी हो गया है, यह बात विधाता की ओर से निरी प्रयोजनहीन मत समझो। यों धन्धा चलाकर आदमी को पता चलता है कि दुनिया में जीवन अकेला नहीं है, अकेले का नहीं है, अकेले वह नहीं चलेगा; लेकिन कुछ आदमी हैं, जो बिना धन्धे के भी रहते हैं। उनमें से मैं तो एक हूँ। दूसरों की दी हुई भीख हमारा भोजन है। वही हमारी वृत्ति है; लेकिन भीख के भोजन पाने की वृत्ति के अधिकार तक आदमी जीवन में कुछ जीने पार करके ही पहुँचता है। आरम्भ में तो स्वभाव को पुष्ट करना होता है। अपने को स्वस्थ और आत्मप्रतिष्ठित करना होता है। विविध उपादानों से लड़कर अपने तई आहार जुटाना और जीवित रहना तथा रखना होता है। जब व्यक्ति आत्मस्थ हुआ, तब जीवन के समस्त संगृहीत उपादान स्वयमेव परिग्रह होने लगते हैं। और, तब वह अपने को जगत् की सदाभिलाषा पर छोड़ देता है। स्वयं भी अपने लिए नहीं रहता—विश्व के लिए रहता है। तुम पाप-पुण्य की बात करते हो; अतः मैं तुमसे कहता हूँ कि इस समय कोई

धन्धा लेकर बैठना तुम्हारा परम धर्म है। कर्म से विमुख होकर मन्दिर में उपासना करने में अपने को भूलने का यत्न करना अधर्म है। स्वाधीन भाव से दूकान लेकर व्यवसाय करो, और उसी को उपासना बना लो। व्यवसाय में भी तुम प्रामाणिकता न तजो, यही सब कुछ है!

मैंने इसी भाँति उससे कुछ और भी बातें कीं। मैंने देखा, कुछ उसमें अटक है। जो कुछ भीतर अटका है, उसे वह चाहकर भी बाहर नहीं ला पाता। 'स्त्री' शब्द भूल कर भी उसकी बातों के आस-पास मैं नहीं पाता। मैं देखता हूँ, वह जवान है। तीस-बत्तीस वर्ष से अधिक उसकी उम्र कभी नहीं हो सकती। उसकी चर्चा में स्त्री-तत्त्व की गन्ध तक के अभाव के प्रति ही मुझे शंका होती है। मैं अपेक्षा रखता हूँ कि वह कभी घर-परिवार आदि की भी बातें मुझ से करे। मेरी समझ में नहीं आता, स्त्री-प्रेम की बातें उससे क्यों एकदम दूर होनी चाहिए।

मैंने कहा—लालचन्द, तुम मुझे अपना समझ लो जब जो चाहे मुझ से कह सकते हो।

मैंने देखा, अब भी उसमें चर्चा चलाने की चाह है कि जीवन का मोक्ष क्या है!

जीवन का मोक्ष क्या है, यह मैं बेचारा भी क्या जानता हूँ। लेकिन लालचन्द को सामने लेकर उस मोक्ष से कहीं मैं यह जानना चाहता हूँ कि लालचन्द इस मोक्ष-चिंतन के पीछे किस ठोकर से उलटकर पड़ा है।

लेकिन मुझे कुछ भी हाथ नहीं आया, और वह विविध विषयों पर आध्यात्मिक चर्चा चलाकर, कुछ सन्तुष्ट और कुछ विषण्ण, लौटकर चला गया।

उसके बाद एक रोज अँगरेजी बाजार के बीच से पैदल जा रहा था कि क्या देखता हूँ, दौड़कर लालचन्द ने मुझे पकड़ लिया है, और कह रहा है—'स्वामीजी, आइए, पधारिये।'

इस समय लालचन्द का मुख वैसा कर्तव्य शून्य नहीं है, और उस पर कुछ प्रफुल्लता भी दिखाई देती है। मैंने कहा—कहो भाई, कहाँ ले चलोगे ?

उसने पास ही एक बहुत बड़ी और शानदार दूकान की तरफ दिखाकर बताया कि वह 'ईस्ट इंपोरियम' उसी की निज की दूकान है। मुझे प्रसन्नता हुई; लेकिन मेरे मन में जरा खटका भी हुआ कि इस आदमी में यह कारबारीपन का लक्षण नहीं है कि अब तक मुझ जैसे स्वामी आदमी की उसे चिन्ता है। वह मुझे दूकान में ले गया और अभ्यर्थना-पूर्वक अपने इस उद्यम के हालचाल सुनाने लगा। उस समय भी मैंने उसमें वह पुरानी प्रकृति जाग्रत देखी। देखा, पाप से भय और पुण्य की चिन्ता उसमें लगी ही रहती है, और वह कुछ आध्यात्मिक विषयों पर वार्त्तालाप करने की आवश्यकता में उलझा ही है।

अगले दिन मानिकचन्द मेरे स्थान पर मुझ से मिलने आये और मुझे धन्यवाद देने लगे कि लालचन्द अलग दूकान लेकर बैठ गया है। उन्होंने बताया कि एक हजार रुपये माहवार का भी नुकसान हो, तो भी हर्ज नहीं है; लेकिन लड़का तो सँभलने पर आया है। उन्होंने बताया कि सचमुच लालचन्द खूब परिश्रमपूर्वक काम करता है, व्यवसाय के मामले में खूब चौकस है। और यह, कि उन्हें बिलकुल उम्मीद न थी कि वह अपनी जिम्मेदारी इतनी महसूस करेगा"""।

दो साल तक, मैं समझता हूँ मुझे यदा-कदा ईस्ट इंपोरियम का वह बड़ा बोर्ड दिखाई देता रहा। उसके बाद मुझे नहीं मालूम क्या हुआ। दूकान वही जवाहरात और अजायबात की वहाँ रही, पर बोर्ड वह न था। मुझे लालचन्द भी नहीं मिला, न उसके सम्बन्ध की और कोई सूचना ही मिली। मैं बीच-बीच में लालचन्द के प्रति अपने भीतर सस्नेह चिन्ता का अनुभव करता था, और मुझे अचरज भी था कि दो-तीन वर्ष हो गये हैं, लालचन्द के विषय में मुझे कोई सूचना क्यों नहीं मिली। आज अभी दो घंटे पहले रतनचन्द (लालचन्द का भाई) मेरे पास होकर गया है। उसने मुझे बताया कि लालचन्द पागल हो गया है। वह घर के एक कमरे में खाली तख्त पर रस्सी से बँधा हुआ पड़ा है। वह चीखता-चिल्लाता है और उसकी बुरी हालत है। नाखूनों और दाँतों से अपने को काट लेता है। रतनचन्द ने चाहा कि मैं उसके साथ तुरन्त घर चलूँ। मैंने कह दिया—मैं तीन-चार घण्टे बाद आऊँगा; क्योंकि मैं यों ही नहीं जाना चाहता, कुछ सोचकर जाना चाहता हूँ।

क्या आप लोगों को लालचन्द के साथ इतना वास्ता अनुभव होता है कि मुझे लाचार करें कि लौट आने पर मैं बताऊँ कि मैंने क्या पाया?

(जैनेन्द्रकुमार)

काकी

उस दिन बड़े सवेरे जब श्यामू की नींद खुली, तब उसने देखा—घर-भर में कुहराम मचा हुआ है। उसकी काकी—उमा—एक कम्बल पर नीचे-से ऊपर तक एक कपड़ा ओढ़े हुए भूमिशयन कर रही है, और घर के सब लोग उसे घेर कर बड़े करुणस्वर में विलाप कर रहे हैं।

लोग जब उमा को श्मशान ले जाने के लिए उठाने लगे, तो श्यामू ने बड़ा उपद्रव मचाया। लोगों के हाथों से छूटकर वह उमा के ऊपर जा गिरा। बोला—काकी सो रही हैं, उन्हें इस तरह उठा कर कहाँ लिये जा रहे हो? मैं न ले जाने दूँगा।

लोगों ने बड़ी कठिनता से उसे हटा पाया। काकी के अग्नि-संस्कार में भी वह न जा सका। एक दासी राम-राम करके उसे घर पर ही सँभाले रही।

यद्यपि बुद्धिमान गुरुजनों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी काकी उसके मामा के यहाँ गई है; परन्तु असत्य के आवरण में सत्य बहुत समय तक छिपा न रह सका। आस-पास के अन्य अबोध बालकों के मुँह से ही वह प्रकट हो गया। यह बात उससे छिपी न रह सकी कि काकी और कहीं नहीं, ऊपर राम के यहाँ गई है। काकी के लिए कई दिन तक लगातार रोते-रोते उसका रुदन तो क्रमशः शान्त हो गया परन्तु शोक शान्त न हो सका। वर्षा के अनन्तर एक ही दो दिन में पृथ्वी से ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है परन्तु भीतर-ही-भीतर उसकी आर्द्रता जैसे बहुत दिन तक बनी

रहती है, वैसे ही उसके अन्तस्तल में वह शोक जाकर बस गया था। वह प्रायः अकेला बैठा-बैठा शून्य मन से आकाश की ओर ताका करता।

एक दिन उसने ऊपर एक पतंग उड़ती देखी ! न जानें क्या सोचकर उसका हृदय एक दम खिल उठा। विश्वेश्वर के पास जाकर बोला—काका, मुझे एक पतंग मँगा दो। अभी मँगा दो।

पत्नी की मृत्यु के बाद से विश्वेश्वर अन्यमनस्क रहा करते थे। 'अच्छा मँगा दूँगा' कहकर वे उदास भाव से और कहीं चले गये।

श्यामू पतंग के लिए बहुत उत्कण्ठित था। वह अपनी इच्छा किसी तरह रोक न सका। एक जगह खूँटी पर विश्वेश्वर का कोट टँगा हुआ था। इधर-उधर देखकर उसने उसके पास एक स्टूल सरका कर रक्खा और ऊपर चढ़कर कोट की जेबें टटोलीं। उनमें से एक चवन्नी का आविष्कार करके वह तुरन्त वहाँ से भाग गया।

सुखिया दासी का लड़का—भोला—श्यामू का समवयस्क साथी था। श्यामू ने उसे चवन्नी देकर कहा—अपनी जीजी से कहकर गुपचुप एक पतंग और डोर मँगा दो। देखो, खूब अकेले में लाना; कोई जान न पावे।

पतंग आई। एक अँधेरे घर में उसमें डोर बाँधी जाने लगी। श्यामू ने धीरे से कहा—भोला, किसी से न कहे, तो एक बात कहूँ।

भोला नें सिर हिलाकर कहा—नहीं, किसी से न कहूँगा। श्यामू ने रहस्य खोला। कहा—मैं यह पतंग ऊपर राम के यहाँ भेजूँगा। इसे पकड़कर काकी नीचे उतरेंगी। मैं लिखना

नहीं जानता। नहीं तो इस पर उनका नाम लिख देता। भोला श्यामू से अधिक समझदार था। उसने कहा—बात तो बड़ी अच्छी सोची, परन्तु एक कठिनता है। यह डोर पतली है। इसे पकड़कर काकी उतर नहीं सकतीं। इसके टूट जाने का डर है। पतंग में मोटी रस्सी हो, तो सब ठीक हो जाय।

श्यामू गम्भीर हो गया। मतलब यह—बात लाख रुपये की सुझाई गई है; परन्तु कठिनता यह थी कि मोटी रस्सी कैसे मँगाई जाय। पास में दाम हैं नहीं और घर के जो आदमी उसकी काकी को बिना दया-माया के जला आये हैं, वे उसे इस काम के लिए कुछ नहीं देंगे। उस दिन श्यामू को चिन्ता के मारे बड़ी रात तक नींद नहीं आई।

पहले दिन की ही तरकीब से दूसरे दिन फिर उसने विश्वेश्वर के कोट से एक रुपया निकाला। ले जाकर भोला को दिया और बोला—देख भोला, किसी को मालूम न होने पावे। अच्छी-अच्छी दो रस्सियाँ मँगा दे। एक रस्सी ओछी पड़ेगी। जवाहिर भैया से मैं एक कागज पर 'काकी' लिखवा रक्खूँगा। नाम की चिट रहेगी, तो पतंग ठीक उन्हीं के पास पहुँच जायगी।

दो घण्टे बाद प्रफुल्ल मन से श्यामू और भोला अँधेरी कोठरी में बैठे-बैठे पतंग में रस्सी बाँध रहे थे। अकस्मात शुभ कार्य में विघ्न की तरह उग्र रूप धारण किये हुए विश्वेश्वर वहाँ आ घुसे। भोला और श्यामू को धमकाकर बोले—तुमने हमारे कोट से रुपया निकाला है?

भोला सकपकाकर एक ही डाँट में मुखबिर बन गया! बोला—श्यामू भैया ने रस्सी और पतंग मँगाने के लिए

निकाला था।—विश्वेश्वर ने श्यामू को दो तमाचे जड़कर कहा—चोरी सीखकर जेल जायगा ? अच्छा तुझे आज अच्छी तरह समझता हूँ। कहकर फिर तमाचे जड़े और कान मलने के बाद पतंग फाड़ डाली। अब रस्सियों की ओर देखकर पूछा ये किसने मँगाईं ?

भोला ने कहा—इन्हींने मँगाई थीं। कहते थे, इससे पतंग तानकर काकी को राम के यहाँ से नीचे उतारेंगे।

विश्वेश्वर हतबुद्धि-जैसे होकर वहीं खड़े रह गये। इन्होंने फटी हुई पतंग उठाकर देखी। उस पर चिपके हुए कागज पर लिखा हुआ था—"काकी।"

(सियारामशरण गुप्त)

—————

अकबरी लोटा

लाला झाऊलाल को खाने-पीने की कमी नहीं थी। काशी के ठठेरी बाज़ार में मकान था। नीचे की दुकानों से एक सौ रुपये मासिक के करीब किराया उतर आता था। कच्चे-बच्चे अभी थे नहीं, सिर्फ दो प्राणी का खर्च था। अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे। पर ढाई सौ रुपये तो एक साथ आँख सेकने के लिये भी न मिलते थे।

इसलिये जब उनकी पत्नी ने एक दिन यकायक ढाई-सौ रुपये की माँग पेश की तब उनका जी एक बार जोर से सन-सनाया और फिर बैठ गया। जान पड़ा कि कोई बुल्ला है जो विलाने जा रहा है। उनकी यह दशा देखकर उनकी पत्नी ने कहा—"डरिये मत आप देने में असमर्थ हों तो मैं अपने भाई से माँग लूँ।"

लाला झाऊलाल इस मीठी मार से तिलमिला उठे। उन्होंने किंचित रौब के साथ कहा—"अजी हटो! ढाई सौ रुपये के लिये भाई से भीख माँगोगी! मुझसे ले लेना।"

"लेकिन मुझे इसी जिन्दगी में चाहिये।"

"अजी इसी सप्ताह में ले लेना।"

"सप्ताह से आपका तात्पर्य सात दिन से है या सात वर्ष से?"

लाला झाऊलाल ने रौब के साथ खड़े होते हुए कहा—"आज से सातवें दिन मुझ से ढाई-सौ रुपये ले लेना।"

"मर्द की एक बात!"

"हाँ जी, हाँ ! मर्द की एक बात।"

लेकिन जब चार दिन ज्यों-त्यों में यों ही बीत गये और रुपयों का कोई प्रबन्ध न हो सका, तब उन्हें चिन्ता होने लगी। प्रश्न अपनी प्रतिष्ठा का था; अपने ही घर में अपनी साख का था। देने का पक्का वादा करके अगर अब न दे सके तो मन में वह क्या सोचेगी ? उसकी नजरों में उनका क्या मूल्य रह जायगा, अपनी वाह-वाही की सैकड़ों गाथाएँ उसे सुना चुके थे। अब जो एक काम पड़ा तो चारों खाने चित्त हो रहे। यह पहली बार उसने मुँह खोलकर कुछ रुपयों का सवाल किया था। इस समय अगर वे दुम दबा कर निकल भागते हैं तो फिर उसे क्या मुँह दिखायेंगे ? "मर्द की एक बात" वह उसका फिकरा उनके कानों में गूँज-गूँज कर फिर गूँज उठता था।

खैर एक दिन और बीता। पाँचवें दिन घबरा कर उन्होंने पं० विलवासी मिश्र को अपनी विपदा सुनाई। संयोग कुछ ऐसा बिगड़ा था कि विलवासी जी भी उस समय बिलकुल खुक्क थे। उन्होंने कहा कि मेरे पास है तो नहीं पर मैं कहीं से माँग-जाँच कर लाने की कोशिश करूँगा और अगर मिल गया तो कल शाम को तुम से मकान पर मिलूँगा।

यह शाम आज थी। हफ्ते का अन्तिम दिन। कल ढाई सौ रुपया या तो गिन देना है या सारी हेकड़ी से हाथ धोना है। यह सच है कि कल रुपया न पाने पर उनकी स्त्री उन्हें डामल-फाँसी न कर देगी—केवल जरा-सा हँस देगी। पर वह कैसी हँसी होगी। इस हँसी की कल्पना मात्र से लाला झाऊलाल की अन्तरात्मा में मरोड़ पैदा हो जाता था।

अभी पं० विलवासी मिश्र भी नहीं आये। आज तो

उनके आने की बात थी। उन्ही का भरोसा था यदि न आये तो ? या कहीं रुपये का प्रबन्ध न कर सके।

इसी उधेड़ बुन में पड़े हुए लाला झाऊलाल छत पर टहल रहे थे। कुछ प्यास मालूम पड़ी। उन्होंने नौकर को आवाज दी। नौकर नहीं था। खुद उनकी पत्नी पानी लेकर आयीं। आप जानते हैं कि हिन्दू समाज में स्त्रियों की कैसी सोचनीय अवस्था है। पति नालायक को प्यास लगती है तो स्त्री बेचारी को पानी लेकर हाजिर होना पड़ता है।

वे पानी तो जरूर लायीं पर गिलास लाना भूल गई थीं। केवल लोटा में पानी लिये हुए वे प्रकट हुईं फिर लोटा भी संयोग से वह जो अपनी बेढंगी सूरत के कारण लाला झाऊलाल को सदा से नापसन्द था। था तो नया, साल ही दो साल का बना, पर कुछ ऐसी गढ़न उस लोटे की थी कि उसका बाप डमरू और माँ चिलमची रही हो।

लाला झाऊलाल ने लोटा ले लिया वे बोले कुछ नहीं, अपनी पत्नी का वे अदब मानते थे। मानना ही चाहिये इसी को सभ्यता कहते हैं। जो पति अपनी पत्नी का न हुआ वह पति कैसा ? फिर उन्होंने यह भी सोचा होगा कि लोटे में पानी हो तब भी गनीमत है, अभी अगर चूँ कर देता हूँ तो बाल्टी में जब भोजन मिलेगा तब क्या करना बाकी रह जायगा।

लाला झाऊलाल अपना गुस्सा पीकर पानी पीने लगे। उस समय वे छत की मुँडेर के पास खड़े थे। जिन बुजुर्गों ने पानी पीने के सम्बन्ध में यह नियम बनाये थे कि खड़े-खड़े पानी न पियो, सोते समय पानी न पियो, दौड़ने के बाद पानी न पियो। उन्होंने पता नहीं कभी यह नियम बनाया था या

नहीं कि छत की मुँडेर के पास खड़े होकर पानी न पियो। जान पड़ता है इस महत्त्वपूर्ण विषय पर उन लोगों ने कुछ नहीं कहा है।

इसलिए लाला झाऊलाल ने कोई बुराई नहीं की अगर वे छत की मुँडेर के पास खड़े होकर पानी पीने लगे। पर मुशकिल से दो एक घूँट वे पी पाये होंगे कि न जाने कैसे उनका हाथ हिल उठा और लोटा हाथ से छूट गया।

लोटे ने न दाहिने देखा न बाँये। वह नीचे गली की ओर चल पड़ा। अपने वेग में उल्का को लजाता हुआ वह आँखों से ओझल हो गया। किसी जमाने में न्यूटन नाम के किसी खुराफाती ने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति नाम की एक चीज ईजाद की थी। कहना न होगा कि यह सारी शक्ति इस समय इस लोटे के पक्ष में थी।

लाला झाऊलाल को काटो तो बदन में खून नहीं। ठठेरी बाजार, ऐसी चलती हुई गली में, तिमंजिले से भरे हुए लोटे का गिरना हँसी खेल नहीं है। यह लोटा न जाने किस अनाधिकारी के खोपड़े पर काशीवास का सन्देशा लेकर पहुँचेगा।

कुछ हुआ भी ऐसा ही। गली में जोर का हल्ला उठा। लाला झाऊलाल जब तक दौड़कर नीचे उतरें तब तक एक भारी भीड़ उनके आँगन में घुस आयी।

लाला झाऊलाल ने देखा कि इस भीड़ में प्रधान पात्र एक अङ्गरेज है, जो नखशिख से भीगा हुआ है और जो अपने एक पैर को सहलाता हुआ दूसरे पैर पर नाच रहा है। उसी के पास उस अपराधी लोटे को भी देखकर लाला झाऊलालजी

ने फौरन दो और दो जोड़कर स्थिति को समझ लिया। पूरा विवरण तो उन्हें पीछे प्राप्त हुआ।

हुआ था यह कि गली में गिरने के पूर्व लोटा एक दूकान के सायबान से टकराया। वहाँ टकराकर उस दूकान पर खड़े उस अङ्गरेज़ को उसने सांगोपांग स्नान कराया और फिर उसी के बूट पर जा गिरा। ध्यान देने की बात है कि हिन्दुस्तानी लोटा भी आखिर वहीं गिरा जहाँ हिन्दुस्तानी आदमी गिरते हैं।

उस अँगरेज को जब यह मालूम हुआ कि लाला झाऊलाल ही उस लोटे के मालिक हैं तब उसने केवल एक काम किया। अपने मुँह को उसने खोल-खोल कर खुला छोड़ दिया। लाला झाऊलाल को आज ही यह मालूम हुआ कि अङ्गरेजी भाषा में गालियों का ऐसा प्रकाण्ड कोष है।

इसी समय पं० बिलवासी मिश्र भीड़ को चीरते हुए आँगन में आते दिखाई पड़े। उन्होंने आते ही पहला काम यह किया कि उस अङ्गरेज को छोड़कर और जितने आदमी आँगन में घुस आये थे सबको निकाल बाहर किया। फिर एक कुर्सी आँगन में रखकर उन्होंने साहब से कहा—"आपके पैर में शायद कुछ चोट आ गई है। आप आराम कुर्सी पर बैठ जाइये।"

साहब बिलवासीजी को धन्यवाद देते हुए बैठ गये और लाला झाऊलाल की ओर इशारा करके बोले—"आप इस शख्स को जानते हैं?" "बिल्कुल नहीं। और मैं ऐसे आदमी को जानना भी नहीं चाहता जो निरीह राह चलतों पर लोटे से वार करे।"

मेरी समझ में "He is a dangerous criminal !" यानी वह खतरनाक मुजरिम है।

नहीं मेरी समझ में "He is a dangerous lunatic !" [नहीं यह खतरनाक पागल है।]

परमात्मा ने लाला झाऊलाल की आँखों को इस समय कहीं देखने के साथ खाने की भी शक्ति दे दी होती तो यह निश्चय है कि अब तक विलवासी जी को वे अपनी आँखों से खा चुके होते। वे कुछ नहीं समझ पाते थे कि विलवासी जी को इस समय हो क्या गया है।

साहब ने विलवासी जी से पूछा—"तो अब क्या करना चाहिये ?"

"पुलिस में इस मामले की रिपोर्ट कर दीजिये, जिसमें इस आदमी को फौरन हिरासत में ले लिया जाय।"

"पुलिस-स्टेशन है कहाँ ?"

"चलिए।"

"अभी चलो। आपकी इजाजत हो तो पहले मैं इस लोटे को इस आदमी से खरीद लूँ। क्यों जी बेचोगे ? मैं पचास रुपये तक इसके दाम दे सकता हूँ।"

लाला झाऊलाल तो चुप रहे पर साहब ने पूछा—"इस रद्दी लोटे का आप पचास रुपये दाम क्यों दे रहे हैं ?"

"आप इस लोटे को रद्दी जानते हैं ? आश्चर्य ! मैं तो आपको एक विज्ञ और सुशिक्षित आदमी समझता था।"

"आखिर बात क्या है कुछ बताइये भी ?"

"यह जनाब ! एक ऐतिहासिक लोटा जान पड़ता है।" जान क्या पड़ता है मुझे पूरा विश्वास है। यह वह प्रसिद्ध

अकबरी लोटा है, जिसकी तलाश में संसार भर के म्यूजियम परेशान हैं।"

"यह बात" !

"जी हाँ जनाब ! सोलहव शताब्दी की बात है। बादशाह हुमायूँ शेरशाह से हारकर भागा था और सिन्ध के रेगिस्तान में मारा-मारा फिर रहा था। एक अवसर पर प्यास से उसकी जान निकल रही थी। उस समय एक ब्राह्मण ने इसी लोटे से पानी पिलाकर उसकी जान बचाई थी। हुमायूँ के बाद जब अकबर दिल्लीश्वर हुआ तब उसने उस ब्राह्मण का पता लगा कर उस से इस लोटे को ले लिया और इस के बदले में उसे इसी प्रकार के दस सोने के लोटे प्रदान किये। यह लोटा सम्राट अकबर को बहुत प्यारा था इसी से इसका नाम अकबरी लोटा पड़ा। वह बराबर इसी से वजू करता था। सन् ५७ तक इसके शाही घराने में ही रहने का पता है। पर इसके बाद लापता हो गया। कलकत्ते के म्यूजियम में इसका प्लास्टर का मॉडल रक्खा हुआ है। पता नहीं यह लोटा इस आदमी के पास कैसे आया ! म्यूजियम वालों को पता चले तो फैन्सी दाम देकर खरीद ले जायँ।"

इस विवरण को सुनते-सुनते साहब की आँखों पर लोभ और आश्चर्य का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कौड़ी के आकार से बढ़कर पकौड़ी के आकार की हो गईं। उसने बिलवासीजी से पूछा—"तो आप इस लोटे को लेकर क्या करियेगा ?"

"मुझे पुरानी और ऐतिहासिक चीजों के संग्रह करने का शौक है।"

"मुझे भी पुरानी और ऐतिहासिक चीजों के संग्रह करने का शौक है। जिस समय यह लोटा मेरे ऊपर गिरा उस

समय मैं यही कर रहा था। उस दूकान पर से पीतल की कुछ पुरानी मूर्त्तियाँ खरीद रहा था।"

"जो कुछ हो लोटा मैं ही खरीदूँगा।"

"वाह आप कैसे खरीदेंगे ? मैं खरीदूँगा। मेरा हक़ है।"

"हक़ है ?"

"जरूर हक़ है। यह बतलाइये कि उस लोटे के पानी से आपने स्नान किया या मैंने ?"

"आपने।"

"वह आपके पैरों पर गिरा या मेरे ?"

"आप के।"

"अँगूठा उसने आपका भुरता किया या मेरा ?"

"आपका।"

"इसलिये उसे खरीदने का हक़ मेरा है।"

"यह सब झोल है। दाम लगाइये, जो अधिक दे वह ले जाय।"

"यही सही। आप उसका पचास रुपया लगा रहे थे, मैं सौ देता हूँ।"

"मैं डेढ़ सौ देता हूँ।"

"मैं दो सौ देता हूँ।"

"अजी मैं ढाई-सौ देता हूँ।"—यह कह विलवासी जी ने ढाई सौ के नोट लाला झाऊलाल के आगे फेंक दिये।

साहब को भी अब ताव आ गया। उसने कहा—"आप ढाई सौ देते हैं तो मैं पाँच सौ देता हूँ। अब चलिये ?"

विलवासीजी अफसोस के साथ अपने रुपये उठाने लगे, मानों अपनी आशाओं की लाश उठा रहे हों। साहब की ओर

देखकर उन्होंने कहा—"लोटा आपका हुआ, ले जाइये मेरे पास ढाई सौ से अधिक हैं नहीं।"

यह सुनना था कि साहब के चेहरे पर प्रसन्नता की कूँची फिर गई। उसने झपट कर लोटा उठा लिया और बोला—"अब मैं हँसता हुआ अपने देश लौटूँगा। मेजर डगलस की डींग सुनते-सुनते मेरे कान पक गये थे।"

'मेजर डगलस कौन हैं?"

"मेजर डगलस मेरे पड़ोसी हैं। पुरानी चीजों के संग्रह करने में मेरी उनकी दौड़ रहती है। गत वर्ष वे हिन्दुस्तान आये थे और यहाँ से "जहाँगीरी अण्डा।" ले गये थे।

"जहाँगीरी अण्डा!" "जहाँगीरी अण्डा!" मेजर डगलस ने समझ रक्खा था कि हिन्दुस्तान से वे ही अच्छी चीज ले जा सकते हैं।"

"पर जहाँगीरी अण्डा है क्या?"

"आप जानते होंगे कि एक कबूतर ने नूरजहाँ से जहाँगीर का प्रेम कराया था। जहाँगीर के पूछने पर कि मेरा एक कबूतर तुमने कैसे उड़ जाने दिया, नूरजहाँ ने उसके दूसरे कबूतर को भी उड़ाकर बताया था कि ऐसे। उसके इस भोलेपन पर जहाँगीर सौ जान से निछावर हो गया, उसी क्षण से उसने अपने को नूरजहाँ के हाथों बय कर दिया। कबूतर का एहसान वह नहीं भूला। उसके एक अण्डे को बड़े जतन से रख छोड़ा। एक बिल्लोर की हाँडी में वह उसके सामने टँगा रहता था बाद में वही अण्डा जहाँगीरी अण्डा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी को मेजर डगलस ने पारसाल दिल्ली में एक मुसलमान सज्जन से तीन सौ रुपये में खरीदा।"

"यह बात !"

"हाँ, पर अब वे मेरे आगे दून की नहीं ले सकते। मेरा अकबरी लोटा उनके जहाँगीरी अण्डे से भी एक पुश्त पुराना है।"

"इस रिश्ते से तो आपका लोटा उस अण्डे का बाप हुआ।"

"साहब ने लाला झाऊलाल को पाँच सौ रुपये देकर अपनी राह ली। लाला झाऊलाल का चेहरा इस समय देखते बनता था। जान पड़ता था कि मुँह पर छः दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी के एक-एक बाल मारे प्रसन्नता से लहरा रहे हैं। उन्होंने पूछा—"बिलवासी! आप मेरे लिये ढाई सौ रुपया घर से लेकर चले थे ? पर आपके पास तो था नहीं।"

"इस भेद को मेरे सिवाय मेरा ईश्वर ही जानता है। आप उसी से पूछ लीजिये। मैं नहीं बताऊँगा।"

"पर आप चले कहाँ ? अभी मुझे आप से काम है; दो घण्टे तक।"

"दो घण्टे तक !"

"हाँ और क्या। अभी मैं आपकी पीठ ठोंककर शाबाशी दूंगा; एक घण्टा इसमें लगेगा फिर गले लगाकर धन्यवाद दूँगा, एक घण्टा इसमें भी लग जायगा।"

"अच्छा पहले अपने पाँच सौ रुपये गिनकर सहेज लीजिये।"

रुपया अगर अपना हो तो उसे सहेजना एक ऐसा सुखद और सम्मोहक कार्य है कि मनुष्य उस समय सहज में ही तन्मयता प्राप्त कर लेता है। लाला झाऊलाल ने अपना कार्य

समाप्त करके ऊपर देखा। पर विलवासीजी इस बीच अन्तर्द्धान हो गये थे।

वे लम्बे डग मारते हुए गली में चले जा रहे थे।

उस दिन रात्रि में विलवासीजी को देर तक नींद नहीं आई। वे चादर लपेटे चारपाई पर पड़े रहे। एक बजे वे उठे। धीरे से, बहुत धीरे से, अपनी सोई हुई पत्नी के गले से उन्होंने सोने की वह सिकड़ी निकाली जिसमें एक ताली बँधी हुई थी। फिर उसके कमरे में जाकर उन्होंने उस ताली से सन्दूक खोली। उसमें ढाई सौ के नोट ज्यों के त्यों रखकर उन्होंने उसे बन्द कर दिया। फिर दबे पाँव लौटकर ताली को उन्होंने पूर्ववत् अपनी पत्नी के गले में डाल दिया। इसके बाद उन्होंने हँसकर अँगड़ाई ली, अँगड़ाई लेकर लेट रहे, और लेट कर मर गये।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे तक वे मरे रहे।

(अन्नपूर्णानन्द)

सूखी लकड़ी

सन् १६२५—

पौष मास के दिन हैं। थाने के निकट से लेकर झोंपड़ी के किनारे तक शाक-भाजी और फलवाले लगातार पाँति बाँध-कर बैठते हैं। वहाँ सड़क से लगी हुई कुछ परचूनी की दुकानें भी हैं। राधे भी गृहस्थी के अपने भाग का उत्तरदायित्व पूर्ण करने के लिये उधर जा निकला है। वहीं, एक दुकान पर बैठी, अपनी सखी से बातें करती हुई वह अँगीठी से हाथ सेंक रही है। उस दुकान के आगे, कुछ हटकर, एक आदमी अमरूदों की ढेरी लगाये हुए है। राधे अमरूद लेकर चलने लगा, तो लकड़ीवाली ने टोक दिया—बाबू, लकड़ी न लेवो?

रुक्ष, म्लान उसकी कुन्तल-राशि है; मैली, फटी उसकी धोती। हाथों में चाँदी की चूड़ियाँ और मुद्रा में लोनी तरुणाई का झुलसता हुआ उद्वेलन।

राधे क्या रोज-रोज लकड़ी लेने की आवश्यकता पड़ा करती है? अभी उसके यहाँ से लकड़ी लिये हुए मुश्किल से पन्द्रह दिन हुए होंगे।

किन्तु मृगाक्षी क्या जाने कि राधे को उसके यहाँ से लकड़ी लिये हुए अभी इतने कम दिन हुए हैं। क्या उसके यहाँ दिनों की नाप का कोई हिसाब रहता है? और दिनों का हिसाब कोई रख भी ले; किन्तु उस हिसाब की उपेक्षा का हिसाब कौन लगाने बैठता है!

राधे तो उसकी ओर देखकर ऐसा विमूढ़ हो गया, जैसे

कोई स्वप्न-भंग हो। बोला लकड़ी! ल—क—ड़ी तो अभी....। अच्छा ले लूँगा। अच्छा, एकदम सूखी है न?

"सूखी हैं बाबू, एकदम सूखी।" कहती हुई वह वहाँ से तुरन्त उठकर अपने झोंपड़े को चल दी।

सूखी लकड़ी! हाँ सूखी लकड़ी ही है वह। उसके जीवन के आम्रतरु में यष्टि है, न किशलय। मञ्जरियों की कौन कहे! कितने पथिक उसके निकट से आ-आकर चले गये, कितने पक्षी उसके निरभ्र अम्बर में नित्य उड़ते रहते हैं! किन्तु इससे क्या? वह सूखी लकड़ी जो है।

२

गङ्गा तट पर कुछ झोंपड़े हैं। बाँस के टट्टरों के उनके दरवाजे बहुत कम ऊँची, मिट्टी की दीवालों पर, साधारण-से दालान की छतें और कहीं-कहीं छप्पर। पावस में जब पानी बढ़ आता है तब ये झोंपड़े दो-ही-चार दिनों में उजड़ जाते हैं। इतने ही अन्तर से वहाँ नावें चलने लगती हैं। छप्पर और टट्टर तो उठा लिये जाते हैं, किन्तु छतें और दीवालें? वे जल-धारा की अनुगामिनी बनती हैं, उनमें आत्मसात् हो जाती हैं! फ़लतः जहाँ मनुष्य और उसकी कामना हँसती, खेलती है, वहाँ बात-की-बात में अनन्त जन-प्लावन देख पड़ता है। उसमें नाना प्रकार के जल-जन्तु-लहराने लगते हैं! कार्तिकी पूर्णिमा के बाद उसी जाह्नवी-कूल पर वे झोंपड़े फिर से बस जाते हैं। मालूम नहीं, कितने दिन से, यही क्रम चला आया है!

इन्हीं झोंपड़ों में से एक में रहती है यह 'लकड़ीवाली'। लेकिन उसका यह नाम तो राधे ने उसके व्यवसाय के

अनुसार रख लिया है। असली नाम क्या है, उसने कभी जानने की आवश्यकता ही नहीं समझी। आज वह विधवा है और अवस्था भी उसकी तीस पार कर आई है। राधे जब इस मुहल्ले में रहने को आया था और दूसरे ही दिन जब उसको लकड़ी खरीदने की आवश्यकता थी, तब एकाएक उसको, अपनी टाल के पास से जाता हुआ देखकर, जिस किसी ने टोककर उससे पूछा था—लकड़ी लेवो बाबू ?—

—वह यही लकड़ीवाली थी और तब भी वह विधवा थी।

किन्तु इस मुहल्ले में आये हुए राधे को कितने दिन बीत गये और अल्हड़ जिज्ञासा-भरे प्रश्न का वह क्षण, सुदूर, अतीत में घुल-मिलकर, कितना धुँधला पड़ गया !

ग्यारह वर्ष—हाँ, ग्यारह वर्ष !

माना कि राधे वर्षों का मूल्य आँकने में कोई उत्साह नहीं रखता। वे आते हैं और चले जाते हैं। उनके आने का नवल आज, जैसा धुले तरु-पल्लव-सा वाचाल प्रतीत होता, कल के भविष्य में, वह भी धूमिल अतीत बनकर, झञ्झा के साथ उड़ा-उड़ा फिरता है ! किन्तु प्रश्न तो यह है कि ग्यारह वर्षों का यह अन्तर भी जिस प्रश्न के मर्म-स्पर्श को शिथिल न बना सका, आज वह राधे के हृत्तल में कम्पित हो-होकर सर्वथा मूक कैसे बना रह सकता है !—जब कि लकड़ीवाली तब भी विधवा थी और आज भी विधवा है !

—किन्तु वैधव्य के साथ कैसा तब और कैसा अब ?

—बात यह है कि लकड़ीवाली यदि चाहती, तो 'अब' को लेकर विधवा नहीं भी रह सकती। वह जाति की निषाद जो है। इन लोगों में विधवा-विवाह का ऐसा कोई निषेधात्मक प्रतिबन्ध नहीं है।

उधर राधे जगत से विरक्त रहकर नहीं चलता; क्यों विरक्त रहे वह ? आँखें और उनके भीतर अध्ययनशीलता रखकर वह विरक्त क्यों बने ? तभी वह, जो सामने आता है, उसे देखता-टटोलता हुआ चलता है। अपनी ओर से वह उत्सुक नहीं बनता। उतना ही देखता, स्पर्श और ग्रहण करता है, जितना उसके सामने आ पड़ता है।

इस लकड़ीवाली को भी राधे ने कुछ इसी तरह देखा है।

३

आगे-आगे वह चल खड़ी हुई, पीछे-पीछे चला राधे; किन्तु थोड़ा चलकर भी वह और चल न सका। लकड़ीवाली जब जरा और आगे निकल जायगी, तब वह जायगा। जल्दी वह कैसे जाय ! न, वह इतनी जल्दी नहीं जायगा। वह न तो पथिक है—न पत्नी।

"तो यह राधे कौन है ?"

"है राधे, तुम्हारा सिर ! पाजी कहीं के।"

वह गई, वह। हाँ, चली गई।

राधे भी चल दिया।

"तो राधे, इस विराम का अर्थ क्या है ?"

"विराम का अर्थ ! हाँ, है क्यों नहीं !–वह सूखी लकड़ी।"

"विराम का जो अर्थ है, वही इस मन्द गति का भी है, राधे ! गति भी मन्दता को प्राप्त होकर यहाँ विराम बन गई है।"

"यह परिहास नहीं है। व्यंग्य भी नहीं है। यह तो दाह है—दाह !"

"दाह है !—किसका ?"

"पूछते हो किसका ! दुष्ट कहीं के ! मेरे सामने बनने आये हो ! जानते नहीं, यह दाह है, एक युग से चले आ रहे संस्कार-

जन्य रूढ़िवाद के ज्वालामुखी में लाललोचना नारी के स्वर्णिम उल्लास का! यही वह दाह है, जिससे झुलस-झुलसकर, तितर-बितर होकर, हिन्दू-जाति का सारा उत्कर्ष, उसका सारा जीवन, विधर्मियों के हिंसक नख-दन्त का शिकार बना है!"

आन्दोलित राधे तब उस टाल के पास जा पहुँचा।

एक मजदूर लकड़ी चीर रहा है। भारी कुल्हाड़ी बेंट-समेत चक्कर बनती हुई उसके सिर के ऊपर जाती और लौट-कर, जोर के साथ, लकड़ी के कुन्दे के भाल को फाड़ देती है। दो-चार हलके-भारी आघात और होते हैं, और बात-की-बात में चार-छः चैले सामने बिखरे मिलते हैं।

राधे ने तब एक चैले को उठाकर देखा। देख, लकड़ी सूखी जरूर है।

लकड़ी ने—हाँ, लकड़ी-रूप जो लड़की है उसने—दो मजदूरनियाँ बुला लीं। उनको अलग-अलग लकड़ी तोलकर, वह धूप में अलग जा बैठी। मजदूरनियाँ अपनी-अपनी लकड़ी इकट्ठा कर-करके गट्ठर बनाने लगीं।

लकड़ीवाली का बूढ़ा बाप है और वह। बस। तीसरा कोई नहीं है और बाप, बूढ़ा तो है ही; बीमार भी रहता है। दमा का मर्ज है उसे। वह एक ओर चारपाई डाले, धूप में, तकिया पर सिर रखे, औंधा बैठा है। खाँसी आती है, तो उसकी पसलियाँ धौंकनी बन जाती हैं।

राधे ने इस ओर भी देखा। देखा, समूचा पेड़ का पेड़ सूख गया है!

मजदूरनियों ने परस्पर के सहयोग से गट्ठर बाँध लिये। एक ने दूसरी को, उसका गट्ठर, उठवा भी दिया; पर अब दूसरी का गट्ठर कौन उठवाये? तब वह लड़की ही उठ खड़ी हुई।

राधे खड़ा-खड़ा कुछ देख रहा था—कुछ सोच रहा था। एकाएक गट्ठर उठवाने के लिए उस लड़की को आता देखकर वह घूमकर खड़ा हो गया। फिर खड़ा भी न रहकर रुक-रुककर, टहलने लगा।

उधर लड़की ने मजदूरिन का गट्ठर उठवा दिया। दोनों मजदूरिनें अपने-अपने गट्ठर लेकर एक ओर चल दीं।

लकड़ीवाली बोली—लकड़ी गई बाबू।

और स्वप्नवाविष्ट-सा राधे उसकी ओर देख कर बोला—"अच्छा!"

किन्तु उसके अन्तराल में, अपने-आप, कोई कह उठा—लकड़ी गई कहाँ?—वह तो चिर रही है!

४

सन् १९३६—

राधे के यहाँ इस बार लकड़ियाँ गीली आ गईं। नौकर, मालूम नहीं क्यों, इस तरह अन्धा बन जाता है कि देखभाल कर चीज नहीं लाता!

अर्जुन बोला—"बाबू, अब के लकड़ियाँ बहुत गीली आई हैं। चूल्हा फूँकते-फूँकते अम्मा की आँखें लाल हो गईं। यह नौकर·········।"

अर्जुन अभी अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाया था कि दौड़ी-दौड़ी अनू (अनुसुइया) भी आ पहुँची। बोली—"बाऊ, अले ओ बाऊ, लअइयाँ ईली एँ। अम्मा ओती एँ।"

एक ओर उलझन—दूसरी ओर कविता।

"मेरी अनू तो 'रानी बिटिया' है"—कहते हुए राधे ने उसकी चुम्मी ली। फिर वह सूखी लकड़ी, खुद देखकर, लाने के लिए चल दिया।

घूमता-फिरता हुआ राधे एक झोंपड़े के पास आकर खड़ा

हो गया। वहाँ लकड़ी चीरी जा रही थीं। राधे बोला—मुझे सूखी लकड़ी चाहिए।

लकड़ीवाली ने ढेर की ओर संकेत कर कहा—है तो यह।

वह इन दिनों बीमार है। चारपाई से लग गई है। अकेली तो वह यों भी थी; किन्तु पिता तो था उसका। माना कि बीमार रहता था; किन्तु था तो वह।—चल तो रहा था। कभी-कभी जब भला-चङ्गा हो जाता, तो खूब मोल-तोल करके, अच्छी तरह घुमा-फिराकर, लकड़ी तो खरीद लाता था; किन्तु इधर अनेक वर्षों से वह भी नहीं हैं। वही सब क्षण-भर में ही लक्ष करके राधे ने जो लकड़ी के उस ढेर की ओर देखा तो कह दिया—यह तो गीली जान पड़ती हैं। ऐसी लकड़ी तो आज नौकर, मालूम नहीं कहाँ से, बहुत-सी ले आया है। मुझे तो एक दम सूखी लकड़ी चाहिए—ऐसी, जिसे फूँकने की भी जरूरत न पड़े—जो एक बार जलकर फिर बराबर जलती ही रहे। अब भी जो गीली लकड़ी ले जाऊँगा, तो घरवाली जली-कटी न सुनायेगी।

वह उठ बैठी। बोली—"बहू?"

राधे ने कह दिया—"हाँ।"

वह तब चुप रह गई।

और राधे उसकी आँखों को जैसे इकटक देखता रह गया; "वे इतनी जल्दी सजल क्यों हो आईं?"—वह सोचता; किन्तु सोच न पाता।

"उँह! तुम तो राधे तिनके-सी जरा-जरा-सी बात को भी इतना महत्त्व देते हो!"—उसके मन में आया था कि वह चल खड़ा हुआ।

उसी क्षण वह बोली—"जाते कहाँ हो बाबू? सूखी लकड़ी लेते जाओ।" साथ ही उसने लकड़ी चीरनेवाले मजदूर से

कहा—"कोठरी में जितनी लकड़ी निकले; बाबू को तोल दो।"

रमजानी ने अपना काम बन्द कर दिया। वह कोठरी से लकड़ी निकाल-निकालकर फेंकने लगा।

उसी क्षण राधे ने सुना—लकड़ीवाली कह रही है—"थोड़ी सी ही होगी। अपने लिए रख छोड़ी थी।" उसने लक्ष्य किया, इस कथन के साथ उल्लास कितना है! उसके म्लान मुख पर भी यह दीप्ति कैसी है!

वह बोला—और अपने लिए?

"अपने लिए कौन जाने कब जरूरत पड़े, बाबू! तुम ले जाओ—बहू को जिसमें तकलीफ न हो। मेरा क्या ठीक?"

—उसने कहा है—मेरा क्या ठीक?

—हाँ, ठीक तो कहा है। अब उसका क्या ठीक?

रमजानी जब गट्ठर बाँध चुका, तो लकड़ीवाली ने कहा—पूरी आठ पँसेरी निकलीं बाबू। छः आने पैसे की।""अब इसे तुम्हीं देते भी आओ रमजानी। बाबू पास ही कहीं रहते हैं। तुम्हारा काम भी अब पूरा हो गया। एक ही कुन्दा तो चीरने को रह गया है।

राधे ने, छः आने पैसे; लकड़ीवाली के निकट जाकर उसके हाथ में रख दिये।

तदनन्तर।

मन भर लकड़ी का गट्ठर सिर पर लादे हुए आगे-आगे रमजानी चला; पीछे-पीछे भारी हो रहे मन को लेकर राधे।

—क्या कहा था?—"थोड़ी-सी ही होंगी, अपने लिए रख छोड़ी थीं।"

—ठीक तो है। लकड़ी सब चिर गई है। केवल एक कुन्दा शेष है! के""व""ल""!

——(भगवतीप्रसाद वाजपेयी)

उसकी माँ

दोपहर को जरा आराम करके उठा था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में, खड़ा-खड़ा, धीरे-धीरे सिगार पी रहा था और बड़ी-बड़ी आलमारियों में सजे पुस्तकालय की ओर निहार रहा था। किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति उनमें से निकाल कर देखने की बात सोच रहा था। मगर, पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर दूसरे तक मुझे महान् ही महान् नजर आये। कहीं गेटे, कहीं रूसो, कहीं नित्शे, कहीं शेक्सपियर, कहीं टॉल्सटॉय, कहीं ह्यूगो—मापासाँ, कहीं डिकिन्स, स्पेन्सर, मेकाले. मिल्टन, मोलियर—उफ! इधर से उधर तक एक से एक महान् ही तो थे। आखिर मैं किसके साथ चन्द मिनट मन बहलाव करूँ यह निश्चय ही न हो सका। महानों के नाम ही पढ़ते-पढ़ते परेशान-सा हो गया।

इतने में मोटर का भों-भों सुनाई पड़ा। खिड़की से झाँका तो सुर्मई रंग की कोई 'फियेट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मैं सोचने लगा—शायद कोई मित्र पधारे हैं, अच्छा ही है। महानों से जान बची।

जब नौकर ने सलाम कर आने वाले का कार्ड दिया, तब मैं कुछ घबराया। उस पर शहर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट का नाम छपा था। से बेवक्त ये कैसे आये?

पुलिस-पति भीतर आये। मैंने हाथ मिलाकर एक चक्कर खानेवाली गद्दीदार कुर्सी पर उन्हें आसन दिया। वे व्यापारिक मुसकराहट से लैस होकर बोले—

"इस अचानक आगमन के लिए आप मुझे क्षमा करें।"
"आज्ञा हो।"—मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होंने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी से एक तस्वीर—

"देखिये इसे। जरा बताइये तो आप पहचानते हैं, इसको ?"

"हाँ, पहचानता तो हूँ।" जरा सहमते हुए मैंने बताया।

"इसके बारे में मुझे आपसे कुछ पूछना है।"

"पूछिये।"

"इसका नाम क्या है ?"

"लाल। मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर, यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है, सो मुझे स्मरण नहीं।"

"कहाँ रहता है यह ?"—सुपरिंटेंडेंट ने पुलिस की धूर्त्त-दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा।

"मेरे बँगले के ठीक सामने एक दोमंजिला कच्चा-पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी माँ।"

"बूढ़ी का नाम क्या है ?"

"जानकी।"

"और कोई नहीं है क्या इसके परिवार में ? दोनों का पालन-पोषण कौन करता है ?"

"सात-आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहान्त हो गया। अब उस परिवार में वह और उसकी माता ही बचे हैं। उसका पिता जब तक जीवित रहा बराबर मेरी जमींदारी का मुख्य मैनेजर रहा। उसका नाम रामनाथ था। वही मेरे

पास कुछ हजार रुपये जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खरचा-वरचा चल रहा है। लड़का कॉलेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो-साल बाद कमाने और परिवार को सँभालने लगेगा। मगर, क्षमा कीजिये, क्या मैं यह पूछ सकता कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे हैं?

"यह तो मैं आपको नहीं बता सकता, मगर इतना आप समझ लें, यह सरकारी काम है। इसीलिए आज मैंने आपको इतनी तकलीफ दी है।"

"अजी, इसमें तकलीफ की क्या बात है? हम तो सात पुश्त से सरकार के फरमाबरदार हैं। और कुछ आज्ञा....।"

"एक बात और", पुलिस पति ने गम्भीरता से, धीरे से कहा—"मैं मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ। आप इस परिवार से जरा सावधान और दूर रहें। फिलहाल इससे अधिक मुझे कुछ कहना नहीं।"

२

"लाल की माँ!" एक दिन जानकी को बुलाकर मैंने समझाया—"तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपना करता है? तुम उसे केवल लाड़-प्यार ही करती हो न? हूँ; भोगोगी।"

"क्या है बाबू?" उसने कहा—"लाल क्या करता है? मैं तो उसे कोई भी बुरा काम करते नहीं देखती।"

"बिना किये ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नहीं। हाँ लाल की माँ, बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह। जरूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।"

"माँ! माँ!!" पुकारता हुआ उसी समय, लाल भी आया। लम्बा, सुडौल, सुन्दर, तेजस्वी।

"माँ!" उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहा—"तू यहाँ भाग आई है। चल तो मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं। उन्हें चटपट कुछ जलपान करा दो। फिर हम घूमने जायँगे।"

"अरे!" जानकी के चेहरे की झुर्रियाँ चमकने लगीं, वह काँपने लगी, उसे देखकर—"तू आ गया, लाल! चलती हूँ भैये! पर देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे हैं। तू क्या पाजीपना करता है, बेटा?"

"क्या है चाचाजी?" उसने सविनय, सुमधुर स्वर से मुझ से पूछा—"मैंने क्या अपराध किया है?"

"मैं तुमसे नाराज़ हूँ लाल!"—मैंने गम्भीर स्वर में कहा।

"क्यों चाचाजी?"

"तुम बहुत बुरा करते हो, जो सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वालों के साथी हो। हाँ, हाँ—तुम हो। देखो लाल की माँ; इसके चेहरे का रङ्ग उड़ गया। यह सोचकर कि यह खबर मुझे कैसे मिली!"

सचमुच एक बार उसका खिला हुआ रङ्ग ज़रा मुरझा गया, मेरी बातों से। पर तुरन्त ही वह सँभला।

"आपने गलत सुना है, चाचाजी। मैं किसी षडयन्त्र में नहीं। हाँ, मेरे विचार स्वतन्त्र अवश्य हैं। मैं ज़रूरत-बेज़रूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ, देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूँ, इस पशु-हृदय परतन्त्रता पर।"

"तुम्हारी ही बात सही, तुम षड्यन्त्र में नहीं, विद्रोह में नहीं, पर यह बकबक क्यों? इससे फायदा? तुम्हारी इस

बकबक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है—पढ़ो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।"

उसने नम्रता से कहा—"चाचाजी, क्षमा कीजिये। इस विषय में मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता।"

"चाहना होगा विवाद करना होगा। मैं केवल चाचाजी नहीं, तुम्हारा बहुत कुछ हूँ। तुम्हें देखते ही मेरी आँखों के सामने रामनाथ नाचने लगते हैं। तुम्हारी बूढ़ी माँ, घूमने लगती हैं। भला मैं तुम्हें बे हाथ होने दे सकता हूँ? इस भरोसे न रहना।"

"इस पराधीनता के विवाद में, चाचाजी मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राज-भक्त, मैं कट्टर राज-विद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते हैं, कुछ कारणों से; मैं दूसरी को, दूसरे कारणों से। आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते—अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिए। मैं भी अपना नहीं छोड़ सकता।"

"तुम्हारी कल्पनाएँ क्या हैं? सुनूँ भी! जरा मैं भी जान लूँ कि अब के लड़के, कॉलेज की गरदन तक पहुँचते-पहुँचते कैसे-कैसे हवाई किले उठाने के सपने देखने लगते हैं। जरा मैं भी सुनूँ—बेटा!"

"मेरी कल्पना यह है कि, जो व्यक्ति समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो—उसका सर्वनाश हो जाय।"

जानकी उठकर बाहर चली।—"अरे, तू तो जमकर चाचा से जूझने लगा।" वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाजे पर खड़े होंगे, लड़ तू, मैं जाती हूँ।" उसने मुझसे कहा—"समझा दो बाबू, मैं तो आप ही नहीं समझती, फिर इसे क्या समझाऊँगी।" उसने फिर लाल की ओर देखा—"चाचा जो कहें मानजा बेटा। यह तेरे भले ही की कहेंगे।"

वह बेचारी, कमर झुकाये उस साठ बरस की वय में घूँघट सँभाले चली गयी। उस दिन उसने मेरी और लाल की बातों की गम्भीरता नहीं समझी।

"मेरी कल्पना यह है कि...." उत्तेजित स्वर से लाल ने कहा—"ऐसे दुष्ट, नाशक, व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो।"

"तुम्हारे हाथ दुर्बल हैं, उनसे जिनसे तुम पंजा लेने जा रहे हो। चर्रर-मर्रर हो उठेंगे। नष्ट हो जायँगे।"

चाचाजी, नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सँवारा गया है, वह बिगड़े ही गा। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिये। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्बल नहीं, भगवान् की सहस्र भुजाओं की सखी हैं।"

"तो, तुम क्या करना चाहते हो?"

"जो भी मुझसे हो सकेगा, करूँगा।"

"षड्यन्त्र....?"

"जरूरत पड़ी तो जरूर...."

"विद्रोह....?"

"हाँ, अवश्य!"

"हत्या....?"

"हाँ—हाँ—हाँ—।"

"बेटा, तुम्हारा माथा, न जाने कौन किताब पढ़ते-पढ़ते बिगड़ रहा है। सावधान!"

३

मेरी धर्मपत्नी और लाल की माँ, एक दिन बैठी हुई बातें कर रही थीं कि मैं पहुँच गया। कुछ पूछने के लिए कई दिनों से मैं उसकी तलाश में था।

"क्यों लाल की माँ! लाल के साथ किसके लड़के आते हैं, तुम्हारे घर में?"

"मैं क्या जानूं बाबू" उसने सरलता से कहा—"मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह प्यारे मुझे दिखाते हैं। सब लापरवाह। वे इतना हँसते, गाते और हो-हल्ला मचाते हैं कि मैं मुग्ध हो जाती हूँ।"

मैंने एक ठण्डी साँस ली—"हूँ, ठीक कहती हो। बातें कैसी करते हैं? कुछ समझ पाती हो?"

"बाबू, वे लाल की बैठक में बैठते हैं। कभी-कभी जब मैं उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूँ, तब वे बड़े प्रेम से मुझे 'माँ' कहते हैं। मेरी छाती फूल उठती है—मानो वे मेरे ही बच्चे हैं।"

"हूँ....." मैंने फिर साँस ली।

"एक लड़का उनमें बहुत ही हँसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दिखता है। लाल कहता था, वह डण्डा लड़ने में, दौड़ने में, घूँसेबाजी में, खाने में, छेड़खानी करने और हो-हो-हा-हा हँसने में समूचे कालेज में फर्द है। उसी लड़के ने एक दिन, जब मैं उन्हें हलवा परस रही थी मेरे मुँह की ओर देखकर

कहा—माँ ! तू ठीक भारत-माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका हिमालय उजला है, तेरे केश। हाँ, मैं नकशे से साबित करता हूँ—तू भारत-माता है। सर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी, बड़ी, रेखाएँ गंगा और यमुना। यह नाक विन्ध्याचल, दाढ़ी कन्याकुमारी तथा छोटी-बड़ी झुर्रियाँ रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे--बाएँ कन्धे पर लहरा दूँ। यह बर्मा बन जायगा। बिना उसके भारत-माता का शृंगार शुद्ध न होगा।"

जानकी उस लड़के की बातें सोच गद्गद् हो उठी "बाबू, ऐसा ढीट लड़का। सारे बच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़ मेरे बालों को बाहर कर अपना बर्मा तैयार कर लिया। कहने लगा—देख, तेरा यह दाहिना कान कच्छ की खाड़ी है—बम्बई के आगे वाली; और यह बायाँ—बंगाल की खाड़ी। माँ, तू सीधा मुँह करके जरा खड़ी हो। मैं तेरी ठुड्ढी के नीचे उससे दो अँगुल के फासले पर, हाथ छोड़कर घुटनों पर बैठता हूँ। दाढ़ी तेरी कन्या कुमारी हा हा हा हा !—और मेरे जुड़े, जरा तिरछे, हाथ सीलोन—लंका !—हा हा हा हा !!—बोल, भारत माता की जय।"

"सब लड़के ठहाका लगा कर हँसने लगे। वह घुटने टेककर, हाथ जोड़ कर, मेरे पाँवों के पास बैठ गया। मैं हक्की-बक्की-सी हँसने वालों का मुँह निहारने लगी। बाबू, वे सभी बच्चे मेरे 'लाल' हैं, सभी मुझे 'माँ'—कहते हैं।"

उसकी सरलता मेरी आँखों में आँसू बन कर छागयी। मैंने पूछा—"लाल की माँ ! और भी वे कुछ बातें करते हैं ? लड़ने की, झगड़ने की, गोला गोली या बन्दूक की ?"

"अरे बाबू" उसने मुसकरा कर कहा—"वे सभी बातें करते हैं। उनकी बातों का कोई मतलब थोड़े ही होता है। सब जवान हैं, लापरवाह हैं, जो मुँह में आता है, बकते हैं! कभी-कभी तो पागलों की-सी बातें करते हैं। महीना भर पहले एक दिन लड़के बहुत उत्तेजित थे। वे जब बैठकर गल-चौर करने लगते हैं, तब कभी-कभी उनका पागलपन सुनने के लोभ से, मैं दरवाजे से सट और छिप कर खड़ी हो जाती हूँ।"

"न जाने कहाँ, लड़कों को सरकार पकड़ रही है। मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे योंही गप हाँकते थे। मगर उस दिन वे यही बक रहे थे। कहते थे—पुलिस वाले केवल सन्देह पर भले आदमियों के बच्चों को त्रास देते हैं, मारते हैं, सताते हैं। यह अत्याचारी पुलिस की नीचता है। ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना, अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को, परमात्मा को भुलाना है—धीरे-धीरे घुलाना मिटाना है।"

"एक ने उत्तेजित भाव से कहा—अजी, ये परदेशी कौन लगते हैं हमारे; जो हमें बरबस, राज-भक्त बनाये रखने के लिए, हमारी छाती पर तोप का मुँह लगाये, अड़े और खड़े हैं ? उफ ! इस देश के लोगों की हिये की आँखें मुँद गई हैं, तभी तो इतने जुल्मों पर भी आदमी, आदमी से डरता है। ये लोग शरीर की रक्षा के लिए अपनी-अपनी आत्मा की चिता सँवारते फिरते हैं। नाश हो इस परतन्त्रवाद का !"

"दूसरे ने कहा—लोग ज्ञानी न हो सकें, इसलिये इस सरकार ने हमारे पढ़ने-लिखने के साधनों को अज्ञान से भर रखा है। लोग वीर और स्वाधीन न हो सकें इसलिए अपमान जनक और मनुष्यता नीति-मर्दन कानून गढ़े हैं। गरीबों को चूसकर, सेना के नाम पर, पले हुए पशुओं को शराब से,

कबाब से, मोटा ताजा रखती है, यह सरकार। धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है, यह लूटक-शासन प्रणाली। नाश हो इस प्रणाली का! इस प्रणाली की तसवीर सरकार का!"

"तीसरा वही बगड़, बोला—सबसे बुरी बात यह है, जो सरकार रोब से—'सत्तावनी' रोब से—धाक से, धाँधली से, धुआँ से, हम पर शासन करती है। यह आँखें खोलते ही, कुचल-कुचलकर, हमें दब्बू, कायर, हतवीर्य, बनाती है और किसलिये जरा सोचो तो! मुट्ठी भर मनुष्यों को अरुण, वरुण और कुबेर बनाये रखने के लिए। मुट्ठी भर मनचले सारे संसार की मनुष्यता की मिट्टी पलीत करें, परमात्मा-प्रदत्त स्वाधीनता का संहार करें—छिः! नाश हो ऐसे मनचलों का!"

"ऐसे ही अण्ट-सण्ट ये बातूनी बका करते हैं बाबू। जभी चार छोकरे जुड़े, तभी यह चर्चा। लाल के साथियों का मिजाज भी, उसी-सा, अल्हड़-बिल्हड़ मुझे मालूम पड़ता है। ये लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे हैं, त्यों त्यों बकबक में बढ़ते भी जा रहे हैं।"

"यह बुरा है, लाल की माँ!" मैंने गहरी साँस ली।

४

जमीन्दारी के कुछ जरूरी काम से, चार-पाँच दिनों के लिए बाहर गया था। लौटने पर बँगले में घुसने से पूर्व लाल के दरवाजे पर जो नजर पड़ी तो वहाँ एक भयानक सन्नाटा-सा नजर आया। जैसे घर उदास हो, रोता हो।

भीतर आने पर मेरी धर्म पत्नी मेरे सामने उदास मुख खड़ी हो गयी।

"तुमने सुना ?"

"नहीं तो, कौन-सी बात ?"

"लाल की माँ पर भयानक विपत्ति टूट पड़ी है।" मैं कुछ कुछ समझ गया, फिर भी, विस्तृत विवरण जानने को उत्सुक हो उठा—"क्या हुआ ? जरा साफ-साफ बताओ।"

"वही हुआ, जिसका तुम्हें भय था। कल पुलिस की एक पलटन ने लाल का घर घेर लिया था। बारह घण्टे तक तलाशी हुई। लाल, उसके बारह-पन्द्रह साथी; सभी पकड़ लिये गये हैं। सभी लड़कों के घरों की तलाशी हुई है। सब के घर से भयानक-भयानक चीजें निकली हैं।"

"लाल के यहाँ....?"

"उसके यहाँ भी दो पिस्तौल, बहुत से कारतूस और पत्र पाये गये हैं। सुना है, उन पर हत्या, षड्यन्त्र, सरकारी राज्य उलटने की चेष्टा, आदि अपराध लगाये गये हैं।"

"हूँ" मैंने ठण्डी साँस ली—"मैं तो महीनों से चिल्ला रहा था कि यह लौंडा धोखा देगा। अब वह बूढ़ी बेचारी मरी। वह कहाँ है ? तलाशी के बाद तुम्हारे पास आई थी ?"

"जानकी मेरे पास कहाँ आई। बुलवाने पर भी कल नकार गई। नौकर से कहलाया—पराँठे बना रही हूँ, हलुवा तरकारी अभी बनाना है। नहीं तो वे बिल्हड़ बच्चे हवालात में मुरझा न जायँगे। जेलवाले और उत्साही बच्चों की दुश्मन यह सरकार उन्हें भूखों मार डालेंगे, मगर मेरे जीते जी यह नहीं होने का।"

"वह पागल है, भोगेगी।" मैं दुःख से टूटकर एक चारपाई पर भहरा पड़ा। मुझे लाल के कर्मों पर घोर खेद हुआ।

इसके बाद, प्रायः एक वर्ष तक वह मुकदमा चला। कोई भी अदालत के कागज उलटकर देख सकता है। सी० आई० डी० ने—और उसके मुख्य सरकारी वकील ने—उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोप किये। उन्होंने चारों ओर गुप्त समितियाँ स्थापित की थीं, उसके खर्च और प्रचार के लिए डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात में छापा मारकर, शस्त्र एकत्र किये थे, पलटन में उन्होंने बगावत फैलाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस के दरोगा को मारा था, और न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस सुपरिंटेंडंट को! ये सभी बातें, सरकार की ओर से प्रमाणित की गईं।

उधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था? प्रायः कोई नहीं। सरकार के डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हें नहीं मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी; तो, 'नहीं' का भाई। हाँ, उनकी पैरवी में सबसे अधिक परेशान वह बूढ़ी रहा करती। वह सुबह-शाम उन बच्चों को—लोटा, थाली, जेवर आदि बेंच-बेंचकर भोजन पहुँचाती। फिर वकीलों के यहाँ जाकर दाँत निपोरती, गिड़गिड़ाती, कहती—

"सब झूठ है। न जाने कहाँ से, पुलिस वालों ने ऐसी-ऐसी चीजें हमारे घरों से पैदा कर दी हैं। वे लड़के केवल बातूनी हैं—हाँ, मैं भगवान् का चरण छूकर कह सकती हूँ। तुम जेल में जाकर देख आओ वकील बाबू! भला वे फूल से बच्चे हत्या कर सकते हैं?"

उसका तन सूखकर काँटा हो गया, कमर झुककर धनुष-सी हो गई; आँखें निस्तेज; मगर उन बच्चों के लिए दौड़ना, हाय-हाय करना, उसने बन्द न किया। कभी-कभी सरकारी

नौकर, पुलिस या वार्डर झुँ झलाकर उसे झिड़क देते, धमकियाँ देते। तब वह खड़ी हो जाती छड़ी के सहारे कमर सीधी कर—"अरे-अरे! तुम कैसे जवान हो। कैसे आदमी हो। मैं तो उन भोले बच्चों के लिए दौड़ती मरती हूँ और तुम मुझे धक्के दे रहे हो! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, भैया?"

उसको अन्त तक यही विश्वास रहा कि यह सब पुलिस की चालबाजी है। अदालत में जब दूध का दूध और पानी का पानी किया जायगा, तब वे बच्चे जरूर बे दाग छूट जायँगे। वे फिर उसके घर में लाल के साथ आवेंगे। हा-हा-हो-हो करेंगे। उसे 'माँ' कहकर पुकारेंगे।

मगर, उस दिन उसकी कमर टूट गयी, जिस दिन ऊँची अदालत ने भी, लाल को, उस बंगड़ लठैत को तथा दो और लड़कों को फाँसी और दस को दस वर्ष से सात वर्ष तक की कड़ी सजाएँ दीं।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियाँ बजाते, मस्ती से झूमते, बाहर आये। सब स पहले उस बंगड़ की नजर उस पर पड़ी—

"माँ!" वह मुसकराया—"अरे, हमें तो हलुवा खिला-खलाकर तूने गधे-सा तगड़ा कर दिया है। ऐसा कि फाँसी की रस्सी टूट जाय और हम अमर के अमर बने रहें। मगर तू स्वयं सूखकर काँटा हो गई है। क्यों पगली—तेरे लिए घर में खाना नहीं है क्या?"

"माँ!" उसके लाल ने कहा—"तू भी जल्द वहीं आना, जहाँ हम लोग जा रहे हैं। यहाँ से थोड़ी देर का रास्ता है माँ! एक साँस में पहुँचेगी। वहीं, हम स्वतन्त्रता से मिलेंगे। तेरी गोद में खेलेंगे, तुझे कन्धे पर उठा कर इधर से उधर

दौड़ते फिरेंगे। समझती है? वहाँ बड़ा आनन्द है!"

"आवेगी न माँ?—बंगाड़ ने पूछा।

"आवेगी न माँ?"—लाल ने पूछा।

"आवेगी न माँ?"—फाँसी दण्ड-प्राप्त दो दूसरे लड़कों ने भी पूछा।

और वह बकर-बकर उनका मुँह ताकती रही—"तुम कहाँ जाओगे पगलो?"

जब से लाल और उसके साथी पकड़े गये, तब से शहर या मुहल्ले का कोई भी आदमी लाल की माँ से मिलने में डरता था। उसे रास्ते में देखकर जान-पहचानी बगलें झाँकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उस बेचारी बूढ़ी पर; मगर मैं भी बराबर दूर ही रहा। कौन अपनी गरदन मुसीबत में डालता, विद्रोही की माँ से सम्बन्ध रखकर?

उस दिन, ब्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालय, वाले कमरे में गया। वहीं, किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति क्षण भर देखने के लालच से मैंने मेज़िनी की कोई जिल्द निकालकर उसे खोला। उसके पहले ही पन्ने पर पेंसिल की लिखावट देखकर चौंका। ध्यान देने पर पता चला, लाल का वह हस्ताक्षर था। मुझे याद पड़ गई। तीन बरस पूर्व, उस पुस्तक को मुझसे माँगकर, उस लड़के ने पढ़ा था।

एक बार मेरे मन में बड़ा मोह उत्पन्न हुआ, उस लड़के के लिए। उसके वफादार पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तसवीर मेरी आँखों के आगे नाच गई। लाल की माँ पर उस पाजी के सिद्धान्तों, विचारों या आचरणों के कारण जो वज्रपात हुआ था, उसकी एक ठेस मुझे भी, उसके हस्ताक्षर

को देखते ही, लगी। मेरे मुँह से एक गम्भीर, लाचार, दुर्बल साँस निकलकर रह गई।

पर, दूसरे ही क्षण पुलिस सुपरिंटेंडेंट का ध्यान आया। उसकी भूरी, सुहावनी, असानवी आँखें मेरी, आप सुखी तो जगसुखी, आँखों में वैसे ही चमक गई जैसे ऊजड़ गाँव के सिवान में कभी-कभी भुतही चिनगारी चमक जाया करती है। उसके रूखे फौलादी हाथ—जिनमें लाल की तसवीर थी—मानो मेरी गरदन चाँपने लगे। मैं मेज पर से 'इरेज़र' (रबर) उठाकर उस पुस्तक पर से उसका नाम उधेड़ने लगा।

इसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की माँ वहाँ आई। उसके हाथ में एक पत्र था।

"अरे!" मैं अपने को रोक न सका—"लाल की माँ! तुम तो बिलकुल पीली पड़ गई हो। तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानो कुछ देख ही नहीं रही हो। यह, हाथ में क्या है?"

उसने चुपचाप पत्र मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा उस पर............जेल की मुहर थी। सजा सुनाने के बाद वह वहीं भेज दिया था, यह मुझे मालूम था।

मैं पत्र निकालकर पढ़ने लगा। वह उसकी अन्तिम चिट्ठी थी। मैंने पत्र कलेजा रूखा कर, उसे पढ़ दिया।

"माँ,

जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सवेरे मैं, बाल अरुण के किरण रथ पर चढ़कर, उस ओर चला जाऊँगा। मैं चाहता तो अन्त समय तुमसे मिल सकता था मगर इससे क्या फायदा? मुझे विश्वास है तुम मेरी जन्म-जन्मान्तर की

जननी हो, रहोगी! मैं तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ? माँ! जब तक पवन साँस लेता है, सूर्य चमकता है, समुद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करुणामयी गोद से दूर खींच सकता है।

दिवाकर थमा रहेगा; अरुण रथ लिये जमा रहेगा मैं, बंगण, वह सभी तेरे इन्तजार में रहेंगे।

हम मिले थे, मिले हैं, मिलेंगे—हाँ, माँ,! तेरा—'लाल'।"

काँपते हाथ से, पढ़ने के बाद पत्र को मैंने उस भयानक लिफाफे में भर दिया। मेरी पत्नी की विकलता हिचकियों पर चढ़कर कमरे को करुणा से कँपाने लगी। मगर वह जानकी ज्यों की त्यों, लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आँखों से मेरी ओर देखती रही। मानो वह उस कमरे में थी ही नहीं।

क्षण भर बाद हाथ बढ़ाकर, मौन भाषा में, उसने पत्र माँगा। और फिर; बिना कुछ कहे, कमरे के—घर के—फाटक के बाहर हो गई, डुगुर, डुगुर लाठी टेकती हुई।

इसके बाद शून्य-सा होकर मैं धम से कुर्सी पर गिर पड़ा। माथा चक्कर खाने लगा। उस पाजी लड़के के लिये नहीं, इस सरकार की क्रूरता के लिए भी नहीं—उस बेचारी, भोली, बूढ़ी जानकी—लाल की माँ के लिए। आह वह कैसी स्तब्ध थी। उतनी स्तब्धता किसी दिन प्रकृति को मिलती, तो आँधी आ जाती, समुद्र पाता, तो बौखला उठता।

जब एक का घण्टा बजा, मैं जरा सगबगाया। ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो हरारत पैदा हो गई है—माथे में, छाती में, रग-रग में। पत्नी ने आकर कहा—"बैठे ही रहोगे, सोओगे नहीं?" मैंने इशारे से उन्हें जाने को कहा।

फिर मेज़िनी की जिल्द पर नज़र गई। उसके ऊपर पड़े रबर पर भी। फिर अपने मुखों की, जमीन्दारी की धनिक-जीवन की और उस पुलिस अधिकारी की निर्दय, नीरस निस्सार आँखों की स्मृति कलेजे में कम्पन कर गई! फिर रबर उठाकर मैंने उस पाजी का पेंसिल-खचित नाम, पुस्तक की छाती पर से मिटा डालना चाहा।

"माँ ँ ँ ँ ँ ँ ँ!"

मुझे सुनाई पड़ा। ऐसा गला, गोया लाल की माँ कराह रही है। मैं रबर हाथ में लिये दहलते दिल से खिड़की की ओर बढ़ा, लाल के घर की ओर देखने के लिए। पर चारों ओर अंधकार था, कुछ नहीं दिखाई पड़ा। कान लगाने पर कुछ सुनाई भी न पड़ा। मैं सोचने लगा भ्रम होगा। वह अगर कराहती होती तो एकाध आवाज और अवश्य सुनायी पड़ती। वह कराहने वाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नहीं घिघियाई थी, जैसे साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर तड़पा करती हैं।

मैं पुनः उसी बात को सोचने लगा। वह उस नालायक के लिए क्या नहीं करती थी। खिलौना की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलारती और सँवारती फिरती थी पर आह रे छोकरे!.........

"माँ ँ ँ ँ ँ ँ!"

फिर वही आवाज! जरूर जानकी रो रही है, वैसे ही जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोये। जरूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री माँ अभागिनी, वै से ही पुकार रही है, जैसे वह पाजी गाकर मचलकर, स्वर को खींचकर उसे पुकारता था।

अँधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला; ऊषा-पीली हुई, लाल हुई, अरुण रथ लेकर वहाँ—क्षितिज के उस छोर पर—आकर, पवित्र मन से, खड़ी हो गई। मुझे लाल के पत्र की याद आ गई।

"माँ ाँ ाँ ाँ ाँ!"

मानो, लाल पुकार रहा था, मानो जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी। मैंने नौकर को पुकार कर कहा:—

"देखो तो, लाल की माँ क्या कर रही है?"

जब वह लौटकर आया तब मैं—एक बार पुनः मेज और मेज़िनी के सामने खड़ा था। हाथ में रबर लिये उसी—उसी उद्देश्य से। उसने घबड़ाये स्वर में कहा—

"हुजूर उनकी तो अजीब हालत है। घर में ताला पड़ा है और वह दरवाजे पर पाँव पसारे हाथ में कोई चिट्ठी लिए, मुँह खोले, मरी बैठी हैं। हाँ, सरकार! विश्वास मानिये, वह मर गई हैं। साँस बन्द है—आँखें खुलीं।"

(बेचन शर्मा उग्र)

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और रामू की बहू घर भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीना हुआ मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भंडार-घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ; सासजी ने माला लिया और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भंडार घर खुला है, तो कभी भंडार-घर में, बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौक़ा मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई! रामू की बहू की जान आफ़त में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हाँड़ी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यह यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परक गई कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी हुई कटोरी पहुँची और रामू जब आये तब कटोरी साफ चटी हुई। बाज़ार से मलाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, मलाई ग़ायब। रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया, उसमें दूध

मलाई, चूहे और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यञ्जन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फ़ासिले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौंसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियाँ और पतिदेव को रूखा सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटे गये, सोने का वर्क़ चिपकाया गया और खीर से भर कर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाजी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगा कर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और झन-झनाहट की आवाज़ के साथ फ़र्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंक कर वह दौड़ी; क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े टुकड़े, और खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नींद न आई, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर ज़िन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुसकराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गई! हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौक़ा हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गईं। रामू की बहू सर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—'अरे राम, बिल्ली तो मर गई। माँजी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।'

मिसरानी बोलीं—'माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।'

सासजी बोलीं—'हाँ, ठीक कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय, तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला!'

महरी ने कहा—'फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी को बुला लाऊँ।'

सास की जान में जान आई—'अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पण्डितजी को बुला ला।'

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ़ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े—पण्डिताइन से मुसकराते हुए बोले—'भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली है। प्रायश्चित होगा,पकवानों पर हाथ लगेगा'।

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे-से, आदमी थे। लम्बाई चार फीट दस इञ्च, और तोंद का घेरा अट्ठावन इञ्च। चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराक वाले पण्डितों को ढूँढ़ा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को इस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे; और कोरम पूरा हुआ। पंचाइत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख! बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ ने कहा—'पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?'

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—'बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम हो जाय जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है।'

'यह कोई सात बजे सुबह।'—मिसरानी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पत्रे के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाईं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया, 'हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त्त में बिल्ली की हत्या! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान! रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ।'

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गये—'तो फिर पण्डित जो अब क्या होगा, आप ही बतलायें?'

पण्डित परमसुख मुसकराये—'रामू की माँ, चिन्ता की कौन सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं? शास्त्रों में प्रायश्चित का विधान है, सो प्रायश्चित से सब कुछ ठीक हो जायगा।'

रामू की माँ ने कहा—'पण्डितजी, उसी के लिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय।'

'किया क्या जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय।'

छन्नू की दादी—'हाँ, और क्या, पंडितजी तो ठीक कहते

हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।'

रामू की माँ ने कहा—'तो पण्डितजी कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय?'

पण्डित परमसुख मुसकराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—'बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय? अरे रामू की माँ, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की माँ, बिल्ली के तौल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी; क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम की क्या होगी; हाँ, कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा!'

रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा—'अरे बाप रे! इक्कीस तोला सोना! पण्ठितजी, यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम न निकलेगा?'

पण्डित परमसुख हँस पड़े—रामू की माँ! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया। बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं!

मोल तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा पाठ की बात आई। पण्डित परमसुख ने कहा—'इसमें क्या मुश्किल है; हम लोग किस दिन के लिए हैं। रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।'

'पूजा का सामान कितना लगेगा?'

'अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन भर नमक भी लगेगा। बस इतने से काम चल जायगा।'

'अरे बाप रे! इतना सामान, पण्डितजी, इसमें तो सौ-डेढ़-सौ रुपया खर्च हो जायगा।'—रामू की माँ ने रुआसी होकर कहा।

'फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है रामू की माँ! खर्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो! यह तो प्रायश्चित है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा, प्रायश्चित में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे थोड़े हैं, अरे सौ-डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।'

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की माँ ने कहा—'पण्डितजी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।'

छन्नू की दादी ने कहा—'और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं। दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं।'

मिसरानी ने कहा—'और फिर माँजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे, इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।'

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डित जी के साथ। पण्डित परमसुखजी मुसकरा रहे थे।

उन्होंने कहा—'रामू की माँ, एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्च है। सो उससे मुँह न मोड़ो।

एक ठण्डी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा, 'अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।'

पण्डित परमसुख जरा बिगड़ कर बोले—'रामू की माँ! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला।' इतना कहकर पण्डितजी ने पोथी पत्रा बटोरा।

'अरे पण्डितजी, रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न'—मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पण्डितजी के पैर पकड़े—और पण्डितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

'इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।—कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा—सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायगा।'

'यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोंद तो देखो—' मिसरानी ने मुसकराते हुए पण्डितजी पर व्यंग किया।

'अच्छा तो फिर प्रायश्चित् का प्रबन्ध करवाओ रामू की माँ, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा

लाऊँ—दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूँगा तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए....'

पण्डितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आई और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबड़ाकर कहा—'अरी क्या हुआ री!'

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—'माजी, बिल्ली तो उठ कर भाग गई।'

(भगवतीचरण वर्मा)

डाकू

दोपहर ढलने का समय था; मगर सूरज अभी तक आग बरसा रहा था।

दरबार साहब (अमृतसर) के दक्षिण में मुसाफिरों के लिए एक बहुत बड़ी धर्मशाला बनी हुई है। इस धर्मशाला में एक बहुत बड़ा तहखाना है। अँधेरा और सील से भरा हुआ। मेले-ठेले की बड़ी भीड़ को जगह देने के लिए ही इस तहखाने का प्रयोग किया जाता है, अन्यथा पृथ्वी के भीतर बना हुआ यह नीची छत का और बीसियों खम्भों पर टिका हुआ अँधेरा हाल मध्य-युग के कैदखानों से कम भयंकर नहीं जान पड़ता; परन्तु गर्मियों की दोपहर को धर्मशाला में टिकनेवाले अमीर से अमीर मुसाफिर भी इस तहखाने का आश्रय लेते हैं।

इसी तहखाने में आज सुबह से दोआबे का मशहूर डाकू सिकन्दरसिंह डेरा डाले पड़ा है। इस सराय में शराब पीने की सख्त मनाही है; परन्तु सिकन्दरसिंह सुबह-सुबह ही शराब की तीन बोतलें खाली कर चुका है। उसका डीलडौल इतना बड़ा और उसकी प्रकृति इतनी भयानक है कि उससे कुछ भी कहने का जैसे किसी को साहस ही नहीं हुआ। तहखाने में अँधेरा रहता है, इससे मक्खियाँ यहाँ आने की हिम्मत नहीं करतीं; परन्तु उनकी कमी मच्छर पूरी कर देते हैं। आज जैसे तहखाने-भर के सभी मच्छर सिकन्दरसिंह के ही आस-पास आ-जमा हुए थे। शराब की तीन बोतलें एक साथ चढ़ाकर सिकन्दरसिंह सो गया था। यही गनीमत है कि शराब पीकर उसने बकझक नहीं शुरू कर दी। दोप-

हर-भर वह इस तहखाने के एक कोने में पड़ा-पड़ा खुर्राटे भरता रहा। उसकी दाढ़ी, मूँछ और केसों के तीन-तीन घने जंगलों में इस समय तक सैकड़ों मच्छर जा फँसे थे और मानो रास्ता भटक जाने के कारण वे सब सायँ-सायँ करके चिल्ला रहे थे। मच्छरों की यह सायँ-सायँ दूर-दूर तक के लोगों को परेशान कर रही थी; मगर सिकन्दरसिंह मस्त होकर पड़ा था। खुद और दुनिया दोनों से बेखबर।

सिकन्दरसिंह के नाम से सारा दोआबा थर-थर काँपता है। उसकी डकैत-पार्टी ने एक बार पुनः पंजाब को वारेन हेस्टिंग्स के जमाने की याद दिला दी है। पिछले दो-तीन बरसों से उसका दल बाकायदा नोटिस देकर डाके डालता रहा है और पुलिस कुछ भी नहीं कर सकी। माँ-बाप ने सिकन्दरसिंह का नाम धरमसिंह रखा था; मगर वह धर्म का शेर न बनकर सिकन्दर जा बना।

किस्मत के फेर से वही सिकन्दर आज फरार के रूप में अमृतसर पहुँचा है। उसके प्रमुख साथी पकड़ लिये गये हैं; परन्तु वह पुलिस को चकमा देकर निकल आया है।

दोपहर जरा ढलने को हुई, तो सिकन्दर की नींद टूट गई। नशे की खुमारी इतनी शीघ्र उतर गई थी। कुछ तो चिन्ता ने और कुछ मच्छरों ने जैसे उसका सारा नशा पी डाला था। लेटे ही लेटे जो अँगड़ाई ली, तो उसके बालों में फँसे मच्छरों में खलबली मच गई। उनकी भिनभिनाहट से बहुत ही परेशान होकर सिकन्दर ने अपनी लाल आँखें खोलीं और तब बिजली की तेजी से उसने अपनी दाढ़ी-मूँछों को मसल डाला। इस जाल में जितने मच्छर फँसे हुए थे, वे सब

क्षण भर में कुचले जाकर सिकन्दरसिंह के चेहरे को और भी घिनौना बनाने लगे।

सिकन्दर ने दूसरी अँगड़ाई ली, और इसके बाद वह उठ कर बैठ गया। दोपहर ढल रही थी और पश्चिम के झरोखों से जरासा प्रकाश इस तहखाने में आ रहा था। सिकन्दर ने अपने को बहुत ही दलित दशा में अनुभव किया। उसकी बीती हुई रात बहुत ही घटना-पूर्ण रही थी। उसके सम्पूर्ण जीवन में इस रात के समान अभाग्य-पूर्ण और भयंकर समय और कभी नहीं बीता। अपने जीवन-भर में उसने जो इमारत बनाई थी, वह सहसा इसी एक रात में गिर पड़ी। आज गर्मियों की इस ढलती हुई दोपहर के समय इस अँधेरे तहखाने में अकेले और भूखे पेट बैठे हुए सिकन्दर को अपने जीवन में पहली बार यह अनुभव हुआ कि वह एक बड़ा अभागा है। डाके डालकर, लोगों का गला घोंटकर, उसने जो धन जमा किया था, वह इस तरह बिलकुल अचानक उसके हाथों से छिन गया और आज वह अपना सिर छिपाने के लिए इस तरह मारा-मारा फिर रहा है; यह भी कोई जिन्दगी है!

तहखाने की दूसरी ओर पाँच-छः प्रेमी सिक्ख बैठे सरदाई घोट रहे थे। सहसा उनमें से एक यात्री गुरुग्रन्थ साहब का कोई शब्द गा उठा और तब एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ तक पहुँचता हुआ भक्ति का वह संगीत सम्पूर्ण तहखाने में मानो सजीव होकर गूँज उठा। भक्ति के संगीत का असर इतना द्रावक और इतना संक्रामक होता है, यह अनुभव सिकन्दर को आज पहली बार हुआ। आखिर वह भी एक सिक्ख ही था न। थोड़ी देर तक तन्मय-सा होकर इसी गीत

को सुनता रहा; जसे—उसके व्याकुल हृदय पर ठण्डा मरहम लगाया जा रहा हो !

परन्तु, सिकन्दरसिंह के पके हुए हृदय पर से इस मरहम का प्रभाव बहुत शीघ्र नष्ट हो गया। पिछली रात की घटनाएँ रह रह कर उसके उदास और व्याकुल हृदय को सन्तप्त करने लगीं। पिछले अठारह घण्टे के भीतर ही भीतर जो अकल्पनीय घटनाएँ घटित हो गई हैं, वे सब एक-एक करके उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख घूम गईं।

आज नाले के निकट एक छोटा-सा गाँव है। इस गाँव में अधिकांश सिक्ख काश्तकार ही आबाद हैं। कल शाम को इसी गाँव के बनिये ने सिकन्दर और उसके साथियों को अपने यहाँ निमन्त्रित किया था। यह बनिया सिकन्दर का अन्तरंग मित्र था। सिकन्दर की डकैत-पार्टी लूट-मारकर जो कुछ संग्रह कर लाती वह सब इसी बनिये के यहाँ स्टोर किया जाता था। हर दूसरे-तीसरे महीने इसी बनिये के यहाँ सिकन्दर का सम्पूर्ण दल जमा होता और तब भविष्य का कार्यक्रम बनाया जाता था।

सदा के समान कल रात भी सिकन्दर तथा उसके प्रमुख सहकारी उसी बनिये के मकान पर एकत्र हुए थे। बनिया कल कुछ घबराया हुआ-सा प्रतीत होता था। सिकन्दर ने उससे इस घबराहट का कारण भी पूछा; परन्तु वह टाल गया। तन्दूर के पराँठे सब्जियाँ, बकरे का माँस, आम, खुमानियाँ आदि चीजें पेट-भर खा लेने के बाद देशी शराब का दौर चलने लगा। बनिया खुद बहुत सँभलकर पी रहा था; परन्तु सिकन्दर और उसके साथियों को वह खूब पीने के लिए प्रेरित कर रहा था। सिकन्दर को किसी बात का शक

तो था नहीं वह पीता चला गया। रात का समय था। गाँव की बात है, जहाँ रात होते ही सभी ओर गहरा अन्धकार छा जाता है। बनिये का मकान गाँव के एक किनारे पर था। उसके बहुत नजदीक से सैकड़ों गीदड़ों की चिल्लाहट सुनाई दे रही थी; परन्तु मकान के भीतर पूरा सन्नाटा था। शराब के नशे में भी ये डाकू शोरगुल प्रायः नहीं मचाते थे।

वह बनिया सहसा मस्ती का नाट्य करने लगा। बाकी सब लोगों पर भी शराब का नशा गहरा असर कर रहा था। बनिया अपनी भद्दी-सी आवाज़ में कोई अश्लील गीत गुनगुनाने लगा और यह गुनगुनाहट क्रमशः ऊँची होती चली गई।

बनिये का यह संगीत जैसे कोई बँधा हुआ चिह्न था। गीत की आवाज़ ऊँची होते ही सहन के दरवाजे पर जोर की एक चोट पड़ी और दरवाज़ा उसी क्षण टूट कर गिर पड़ा। मिनट भर की भी देर नहीं हुई, और सिकन्दर तथा उसके साथियों ने अपने को हथियारबन्द पुलिस से घिरा हुआ पाया। सिकन्दर को सारा मामला समझने में देर न लगी। उसकी कमर में एक छोटी-सी कृपाण बँधी थी। उसने चाहा कि वह उसी कृपाण से बनिये के टुकड़े-टुकड़े कर डाले; परन्तु पुलिस ने अपने काम में देर नहीं की। टार्च की तेज रोशनी में सभी डाकुओं के हाथ-पैर कस दिये गये।

रात-ही-रात में यह खबर आस-पास के सभी गाँवों में फैल गई। गाँव वालों के लिये यह संसार का सबसे बड़ा समाचार था। एक मोटरलारी में बन्द करके सब डाकुओं को उसी समय अजनाला पुलिस स्टेशन पर पहुँचा दिया गया।

रात के तीसरे पहर, जब सिकन्दर के सभी साथी सींकचों

में बन्द होकर ऊँघ रहे थे, उसके एक दोस्त और फ़रमाबरदार साथी डाकू ने जिस तरह अपनी जान देकर उसे हवालात से छुड़वाया और जिस तरह रात-ही रात में अजनाले से भागकर वह अमृतसर तक आ पहुँचा, वह सब सिकन्दर को जैसे किसी बहुत पुरानी, पिछले जन्म की-सी याद के समान जान पड़ा।

और अब जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना के कुछ ही घण्टों के बाद, भक्ति का यह संगीत, तीर्थ-यात्रियों का यह उल्लास और गुरुओं की पवित्र भूमि यह अमृतसर। सिकन्दर चौंक कर उठ खड़ा हुआ। वह आज अमृतसर में है। अपने डकैत जीवन में वह आज पहली बार अमृतसर आया है। और कहीं न जाकर अमृतसर क्यों चला आया?

और तब सिकन्दर सहसा विचलित हो उठा और अत्यधिक उद्विग्न भाव से उसी अन्धकारमग्न तहखाने के भीतर सीमित-से स्थान पर टहने लगा।

साँझ हो गई थी। तहखाने के अधिकांश लोग बाहर चले गये थे। सिकन्दर को भी भूख-प्यास की जलन अनुभव होने लगी। आज सुबह-सुबह अमृतसर पहुँचते ही बाजार की किसी दूकान से वह शराब की तीन बोतलें चुरा लाया था। उन तीन बोतलों के अतिरिक्त कल रात से अभी तक कुछ भी उसके पेट में नहीं पहुँचा था।

सिकन्दरसिंह ने अपने कपड़े झाड़े, और तब वह तहखाने से बाहर निकल आया। सराय के ठीक बीचों-बीच बनी टंकी का नल खोलकर उसने हाथ-मुँह धोया, बाल साफ किये और कंघी की सहायता से यथासम्भव शरीफाना और रोबीली सूरत बनाकर वह सराय से बाहर चल दिया।

सूरज अब तक मकानों की ओट में हो गया था; इससे अमृतसर की तङ्ग सड़कें पूर्णरूप से छायामय हो गई थीं और उन पर आवागमन बहुत बढ़ गया था। सिकन्दर धीमी चाल से चुप-चाप इसी भीड़ में बढ़ता चला गया। अमृतसर के तङ्ग; परन्तु सम्पन्न बाजारों में उसे कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। इस समय तो उसे केवल दो ही बातों की चिन्ता थी—एक पेट भरने की और दूसरी पुलिस से बचने की।

जलियाँवाला बाग़ के निकट पहुँचकर उसकी निगाह उर्दू अख़बारों के साँझ-संस्करण के पोस्टरों पर पड़ी। यह देखकर उसे विशेष सन्तोष हुआ कि उसी की कल की बहादुरी के कारनामे उन पोस्टरों में बड़े-बड़े अक्षरों में दिये गये हैं। बाज़ार में बीसियों जगह उसने अपनी चरचा सुनी।

घूमते-फिरते सिकन्दर गुरु बाजार में जा पहुँचा। इस तङ्ग-से बाजार में भीड़-भाड़ और भी अधिक थी। एक जगह उसने देखा कि एक दूकान के सामने एक शानदार बन्द मोटर गाड़ी खड़ी है और उसकी अगली सीट पर बैठे दो सज्जन उसी के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं। इस कार की पिछली सीट पर तीन महिलाएँ बैठी हुई थीं। एक वृद्धा और दो युवतियाँ। उनके बीचों-बीच चमड़े का एक जनाना बटुआ पड़ा हुआ था। सिकन्दर ने उस बटुए तथा उस वृद्ध महिला के कीमती आभूषणों को लालच की निगाह से देखा। वे दोनों भद्र पुरुष उसके सम्बन्ध में क्या बातें कर रहे हैं, यह जानने की भी उसे उत्कण्ठा हुई। बाजार में बेहद भीड़ थी और इस जगह कार खड़ी होने के कारण बाजार का आवागमन और भी दिक़्क़त के साथ हो रहा था। सिकन्दरसिंह इसी भीड़ में इधर-से-उधर धक्के खाने और धक्के मारने

लगा। सिकन्दर को बहुत शीघ्र मालूम हो गया कि उन दोनों में से एक बहुत ऊँचा सरकारी अफ़सर है। और उसी की जबानी उसने यह भी सुना कि उसे पकड़ने वाले के लिये सरकार ने ५ हजार रुपयों के इनाम की घोषणा कर दी है।

एक ही दो मिनट के भीतर गुरु बाजार में एक भारी डकैती हो जाने का शोर मच गया। कार में अपने पति और अपनी सन्तान के साथ बैठी हुई एक सम्भ्रान्त रमणी के गले का कीमती हार और बटुआ दिन दहाड़े चोरी हो गया। लोगों ने चोर को देखा भी मगर वह पकड़ा नहीं गया। दो-तीन हजार रुपयों की चोरी का यह समाचार फ़र्लांग भर दूर पहुँच कर ही दो-तीन लाख रुपयों की चोरी का समाचार बन गया और तब सम्पूर्ण गुरु बाजार में जैसे एक भूकम्प-सा आ गया।

और उधर चोरी के माल को अपने कच्छे में छिपाये हुए सिकन्दरसिंह अब घंटाघर के नजदीक जा पहुँचा था। घंटाघर के आस-पास जो थोड़ी-सी खुली जगह है, वहाँ खड़े होकर दो एक क्षण तक परिस्थिति पर विचार करते हुए सिकन्दर ने सोचा कि सबसे अच्छा यही रहेगा कि वह पुनः उसी तहखाने में पहुँचे, ताकि बटुए में से रुपया निकालकर वह खाने-पीने का कुछ इन्तजाम कर सके। इस समय क्षुधा-निवारण ही उसकी सबसे बड़ी समस्या थी।

परन्तु, सहसा उसकी निगाह अपनी दाहिनी ओर घूम गई। घंटाघर के निकट ही स्वच्छ जल का एक बहुत बड़ा तालाब है। श्वेत संगमरमर से छाया हुआ-सा। इस तालाब के बीचों-बीच एक बहुत बड़ा मन्दिर है। सोने से ढका हुआ-

सा। इस अँधियारी साँझ को बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में जैसे वह सम्पूर्ण तालाब झकझक कर रहा था।

सिकन्दरसिंह को यह दृश्य सचमुच स्वर्गीय जान पड़ा जिस दरबार साहब की महिमा वह बचपन से सुनता चला आता है, जिसकी भव्यता के अन्तःकरण में माँ की मधुर याद के समान अङ्कित है, जो प्रत्येक सिक्ख के लिये सब से बड़ा तीर्थ है, वही पवित्र दरबार इस समय उसकी आँखों के सामने है। वह आज अचानक दरबार साहब की ड्योढ़ी के निकट आ खड़ा हुआ है—इस अनुभूति ने उसके हृदय में एक विशेष प्रकार की उमङ्ग-सी पैदा कर दी, और इसके बाद जूते उतार कर वह भी दरबार साहब की दर्शनीय भीड़ में शामिल हो गया।

यन्त्र चालित के समान आगे बढ़ते-बढ़ते उसने अपने को दरबार साहब में ठीक गुरुग्रन्थ साहब के सामने पाया। संगत लगी हुई थी। अन्य तीर्थ-यात्रियों के साथ-साथ भीतर पहुँचकर सिकन्दर ने अत्यन्त श्रद्धा-भाव से मस्तक झुकाकर अदृश्य परम अकाल पुरुष को प्रणाम किया। एक सेवादार ने थाल में से थोड़ा-सा हलुआ निकालकर सिकन्दर को प्रसाद दिया, जिसे माथे लगाकर वह अत्यन्त भक्ति-भाव से उदरस्थ कर गया। इसके बाद निकट ही एक ओर वह भक्तों की श्रेणी में जा बैठा।

मन्दिर के भीतर सुगन्ध की लपटें-सी उठ रही थीं। ग्रन्थी महोदय बहुत ही श्रद्धा-भाव से गुरुग्रन्थ पर चँवर डुला रहे थे। एक ओर रागियों की टोली बैठी थी और सितार, तबला तथा हारमोनियम के साथ वह अलाप ले रही थी—

हम निरगुन तुम तत्त्वग्यानो !

भक्त लोग चुपचाप सुन रहे थे। परन्तु-बीस मिनट बीत गये और यह आलाप समाप्त नहीं हुआ—

हम निरगुन तुम तत्त्वग्यानी !

मालूम नहीं, यह आलाप कब से शुरू हुआ था और कब तक जारी रहेगा। गानेवाले गाये जा रहे हैं और सुननेवाले सुने जा रहे हैं।

हम निरगुन तुम तत्त्वग्यानी !

इन सरल से शब्दों में कुछ ऐसी गहराई थी, इस स्वर में कुछ ऐसा माधुर्य था, चारों ओर के वातावरण में कुछ ऐसा जादू था कि जन्म-भर के डकैत और हत्यारे सिकन्दरसिंह के अन्तःकरण में भी क्षण-भर के लिए मानो आत्म-प्रकाश का उजियाला-सा छा गया। हाँ, सच ही तो है। उसका जीवन, आपका जीवन है। उसमें तत्त्व जरा भी नहीं, गुण एक भी नहीं। और हे परम अकाल पुरुष! तुम तत्त्व हो तत्त्व हो! तुम मेरे अन्तरतम को पहचानते हो। मैं अधम हूँ, नीच हूँ, महापापी हूँ; परन्तु मैं तुम्हारा दास हूँ। केवल तुम्हारे ही नाते अब भी मेरे लिए आशा हो सकती है।

सिकन्दरसिंह के शरीर-भर में रोमांच हो आया। भक्ति के आवेश में क्षण-भर के लिए जैसे वह सभी कुछ भूल गया। वह भूल गया कि वह एक डाकू है और उसे पकड़वाने के लिए पाँच हजार रुपयों के इनाम की घोषणा हो चुकी है। वह भूल गया कि वह सुबह का भूखा है और इस वक्त उसे जोर की भूख मालूम हो रही है। वह तो इतना भी भूल गया कि वह एक मुसाफिर है और क्षण-भर के लिए यहाँ आ बैठा है। उसे तो ऐसा जान पड़ा, जैसे वह मुद्दत से इसी

मन्दिर का है, जैसे संसार के साथ उसका कहीं कोई नाता नहीं। नाता है तो सिर्फ इसी मन्दिर से, इसी दरबार से और इसी दरबार के साहब से।

हम निरगुन तुम तत्त्वग्यानी!

अपने जीवन में शायद पहली बार सिकन्दर की आँखों में पानी भर आया।

इस समय किसी भद्रकुल की एक बहुत ही सुन्दर नारी ने मन्दिर में प्रवेश किया। इस महिला की गोद में दो-तीन महीने का फूल-सा कोमल एक बालक था। वह महिला बड़ी भक्ति के साथ आगे बढ़ी और अपने गोद के बालक के मस्तक को उसने ग्रन्थ साहब के नीचे के फर्श से छुआ दिया। इसके बाद वह स्वयं अपना मस्तक झुकाकर ग्रन्थ साहब के सम्मुख साष्टांग प्रणाम करने लगी। प्रतीत होता है, जैसे वह अपनी प्रथम सन्तान की कोई मनौती मनाने यहाँ आई थी।

दो-तीन मिनट के बाद वह महिला उठी। अपनी कलाइयों में सोने की वह जितनी चूड़ियाँ पहने हुए थी, वे सब उसने उतार दीं और अत्यन्त श्रद्धा-भाव के साथ उन्हें ग्रन्थ साहब के सामने बिछी चादर पर रख दिया।

मन्दिर में उपस्थित सभी लोगों ने उस नारी के इस त्याग को बड़ी श्रद्धा के साथ देखा; परन्तु सिकन्दरसिंह पर तो इस घटना ने जैसे जादू कर दिया। उसका अङ्ग-अङ्ग काँपने लगा और बहुत ही विचलित होकर वह उठ खड़ा हुआ। काँपते हुए हाथों से उसने हाल ही में चुराया हुआ वह सोने का कण्ठहार तथा बटुआ बाहर निकाला और परम अकाल पुरुष के सम्मुख नतमस्तक होकर उसने वे दोनों चीजें उसी चादर

पर रख दीं और इसके साथ-ही-साथ फ़ौलाद-सा मज़बूत सिकन्दरसिंह बच्चों की तरह फुफकार कर रो उठा !

दस बजते-न-बजते सम्पूर्ण अमृतसर में इसी बात की चरचा थी कि दोआबे का प्रसिद्ध डाकू सिकन्दरसिंह दरबार साहब में गिरफ्तार हो गया है।

(चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार)

शत्रु

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिये, और कहा—ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है, और मानव-जाति उस अन्धकार में पथ-भ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उनका नेता बनकर उनके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सब को सुनाकर कहने लगा—मैं मसीह हूँ, पैग़म्बर हूँ, भगवान् का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है।

लेकिन, किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते; कुछ कहते, पागल है; अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

× × × ×

आखिर तंग आकर वह एक अँधेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण क्रन्दन की आवाज़ सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक

बहुत छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है, या मर चुका है; क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा—बहन क्यों रोती हो?

उस स्त्री ने कहा—मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है।

ज्ञान का निश्चय और दृढ़ हो गया। उसने कहा—तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा—धर्म झूठा बन्धन है। परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग करता है; अतः हमारा शत्रु है।

लेकिन किसी ने कहा—जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने पास रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें? वह समाज से पतित है, नीच है।

तब लोगों ने उसे समाज-च्युत करके बाहर निकाल दिया।

× × × ×

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता।

तब वह इसी प्रकार का प्रचार करने लगा। वह कहने लगा—ये धर्मध्वजी, ये पोंगे-पुरोहित-मुल्ला, ये कौन हैं? इन्हें क्या अधिकार है, हमारे जीवन को बाँध रखने का? आओ,

हम इन्हें दूर करदें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि उन्नति-पथ पर बढ़ सकें।

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गए, क्योंकि यह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

× × × ×

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विरोध धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाए रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं! पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब समाज को तोड़ना होगा, तब.......।

और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मैले-कुचैले, फटे-पुराने, खाकी कपड़े पहने हुए था। मुख पर झुर्रियाँ पड़ी थीं, आँखों में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा—आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोजी कमा सकूँ। मैं विदेशी हूँ, आपके देश में भूखा मर रहा हूँ। कोई भी काम आप मुझे दें, मैं करूँगा। आप परीक्षा लें। मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है।

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा—मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूँ।

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया। बोला—अच्छा! मैं आपके दुःख से बहुत दुःखी हूँ। मुझे अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली

घात है। परमात्मा आपकी रक्षा करे। मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ?

× × × ×

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख ही है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा....।

और उसने 'भूख के लड़ाकों' का एक दल बनाना शुरू किया जिसका उद्देश्य था, अमीरों से धन छीन कर सबमें समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना, इत्यादि; लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला, तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों-द्वारा उसे पकड़ मँगाया और एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया। वहाँ एकान्त में वे उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबेना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश मैं कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है! यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा, कितना बेमानी!

एक दिन एक किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एकदम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूद कर प्राण खो देगा और परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो; मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ, लेकिन ऐसे संसार में मेरा स्थान नहीं है।

वह स्थिर, मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है और मानो कह रहा है—बस, अपने-आपसे लड़ चुके ?

× × × ×

ज्ञान सहमकर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और क़िले में चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।
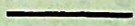
कर्मफल

बहुत जाड़ा था। बहुत जोर का पानी पड़ रहा था। बाज़ार और गली-कूचें सूने पड़े थे। बिना बहुत ज़रूरी काम के कोई मकान से बाहर निकलना न चाहता था। जिन लोगों के मकान नहीं, सर्दी और तपिश में जिन लोगों के लिए ईश्वर का आकाश या म्युनिसिपैलिटी के लगाये पेड़ ही आश्रय हैं, वे लोग भी जहाँ-तहाँ भले लोगों के मकान या हवेलियों की आड़ में छिप कर हवा-पानी से सिर बचाने की कोशिश कर रहे थे। सेठजी की हवेली के लम्बे-चौड़े सूने बरामदे में, समीप के नीम के नीचे से एक बे-घरबार का जीव सरक आया। उसके बाद दूसरा, तीसरा, इसी तरह छः सात जीव आ जमा हुए। बरामदे के दाईं ओर के कोने में, जहाँ बौछार न आसकने से जगह बिलकुल खुश्क थी, वहाँ पहले आकर जिसने अपना टाट का टुकड़ा बिछा लिया था, उसे दूसरे जीवों का वहाँ पर आकर घपला करना असह्य हो रहा था। लेकिन, बाद में आये हुओं के लिए तेज हवा और बौछार से बचने की रक्षा न करना भी असम्भव था। वे पहले आये हुए व्यक्ति के अधिकार को, उसके पीछे किसी प्रकार की शक्ति न होने के कारण, मानने के लिए तैयार नहीं थे। इन बेवकूफों को इतनी तमीज़ नहीं थी कि यदि दरख्त के अधिकार को न माना जाय, तो ज़मीदारी की सत्ता भी नहीं रह सकती।

झगड़ा होने लगा, चीख़-पुकार मचने लगी। माँ-बहन को ले तरह-तरह की ललकारें सुनाई पड़ने लगीं। इस सब के ऊपर गोद में छिपे हुए सर्दी और भूख से बिलखते हुए बच्चे

अपनों पर होते हुए अत्याचार के प्रतिकार में चिल्लाने लगे।

सेठजी अँगीठी के सामने बैठे जरूरी कागजात देख रहे थे। शोर से उद्विग्न होकर उन्होंने द्वारका धीमर को ललकारा—यह सब क्या घपला हो रहा है ?

अनिच्छा से रजाई ओढ़ द्वारका ने बरामदे में झाँका। क्रोध में उसने डण्डा उठा, गालियाँ देते हुए, उन सब अवांछनीय बदमाशों को वहाँ से खदेड़ दिया। कोई भाग कर किसी बन्द (मकान) दुकान के छज्जे के नीचे जा बैठा, कोई किसी ड्योढ़ी की आड़ में हो गया; लेकिन बिन्दी की टाँगों में इतना जोर बाकी न था, तिस पर गोद के बच्चों का बोझ। टाट के टुकड़े में लपेटे बच्चे को पेट से चिपकाये वह फिर दस कदम पर नीम के पेड़ के तने से सटकर आ बैठी।

अँधेरा खूब घना हो गया था; पर पानी के रुकने का कोई आसार नहीं था। तिस पर पछवा खूब तेज बह रही थी। रोते-रोते बिन्दी के बच्चे का गला रह गया; पर उसकी हिचकी बन्द न होती थी। पिछली साँझ से बच्चे के मुँह में कुछ नहीं गया था। बारिश के मारे कोई भला आदमी घर से बाहर निकलता ही न था। बिन्दी को कोई पैसा-धेला कहाँ से मिलता। मुँह में अन्न गये बिना उसकी छाती में दूध कहाँ से आता। बच्चा अपने एक निर्बल दाँत से छाती को काटकर पेट भर लेने की कोशिश दिन भर कर चुका था; परन्तु न छाती में ही कुछ था और न दाँत में ही शक्ति थी। तिस पर वह जाड़ा, जो ईंट-पत्थर की दीवारों को भेद, मोटे-मोटे लिहाफ़ों के भीतर पहुँच कर भी शरीर के रोंगटे खड़े किये देता था !

बिन्दी का बच्चा रह-रहकर चिड़िया के बेपर के चूजे की

तरह मुँह बा देता था। न उसमें से रोने की आवाज निकल पाती थी, न उसमें जाने के लिए ही कुछ था। बिन्दी अधीर हो उसे पुचकार-पुचकार कर उसे अपने शरीर की गरमी से गरम रखने की चेष्टा कर रही थी। यदि माँ के स्नेह में, बच्चे को जाड़े से बचा लेने की शक्ति होती,""यदि उसमें बच्चे का पेट भर देने की सामर्थ्य होती""।

बिन्दी न डॉक्टर थी न वैद्य; लेकिन बच्चे का दरद माँ का हृदय अनुभव न करेगा, तो कौन करेगा। जब म्यूनिसिपैलिटी के घण्टा-घर ने इस हवा-पानी में भी भले आदमियों को यह सूचना देनी जरूरी समझी कि दस बज गये हैं, सोने का समय हो गया है, तब बिन्दी को सहसा ऐसा जान पड़ा, मानो उसकी गोद सूनी हो गई। उसकी गोद का बोझ बे मतलब हो गया। उसके हृदय से एक मर्म-भेदी चीख निकल पड़ी। वह सिर और छाती पीट-पीटकर रोने लगी। सुनसान रात में आराम के वक्त उसके क्रन्दन से भले आदमियों की नींद खराब न हो; इसलिए पछवा उसकी चीख को उड़ाये लिए जा रही थी। पानी उसे दबाये दे रहा था।

नीम के नज़दीक ऊपर दुमञ्जिले पर जो खिड़की थी, वहाँ सेठानीजी के सोने का कमरा था। सेठानीजी नींद न आने के कारण दुखित हो, नींद की प्रतीक्षा कर रही थीं। समीप ही उनकी बिटिया सो रही थी। कुछ दिन बीमार रहने के कारण बिटिया दुबला गई थी। गाल ढीले पड़कर आँखें कुछ-कुछ दिखाई देने लगी थीं। सेठानीजी बिटिया के कारण परेशान रहती थीं। नीचे बेवक्त रोने की आवाज़ सुनाई देने के कारण उन्हें बहुत बुरा मालूम हुआ। चिल्लाकर उन्होंने कहा—अरे कोई है तो देखो, यह नीचे कौन स्यापा डालकर

अपने को रो रहा है। बिटिया की जरा आँख लगी है। उसे क्या सोने नहीं देगा। माँ की कोमल आवाज़ से नन्हीं की नींद उचट गई। उसने पूछा क्या है माँ?

माँ ने पुचकार कर कहा—कुछ नहीं मेरी रानी बेटी, सोजा।

बेटी ने पूछा—कोई रोता है क्या माँ?

बेटी को पुचकार कर माँ ने कहा—तू सोजा बेटी, कोई राँड नीचे बाज़ार में अपने कर्मों को रो रही है। तू सोजा; मैं अभी भेजकर उसे निकलवाए देती हूँ।

नीचे से रोने की आवाज़ आ रही थी। सेठानीजी ने उन्हें और उनकी बिटिया को यों दुःख देने वाले के विरुद्ध भगवान् की दुहाई दी और द्वारका को पुकारा।

नीम की तरफ से द्वारका की ललकार सुनाई दी—चल हट राँड यहाँ से, तमाशा करने आई है! भाग जा, नहीं एक डण्डे से सिर तोड़ दूँगा।

नन्हीं ने माँ को सम्बोधन कर कहा—यह कोई बड़ी पापिन होगी माँ, जो ऐसे रो रही है।

"और क्या बेटी"—कहकर माँ ने बेटी के धर्मभाव का अनुमोदन किया। और उसे सुलाने के लिये उसका सिर हिलाने लगी।

अपने बेमतलब बोझ को छाती से लपटाये, चिपटाये बिन्दी रोती, चीखती दूर चली गई। ऊपर लिहाफ़ में लेटकर सेठानीजी भगवान् का नाम लेती हुई, भगवान् से भिक्षा माँगने लगीं—मेरी बेटी का कष्ट दूर करो भगवान्! और यों जिसने बेटी की नींद बिगाड़ दी, उसका सत्यानाश हो।

(यशपाल)

पिंजरा

शान्ति ने ऊबकर काग़ज़ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उठ कर अनमनी सी कमरे में घूमने लगी। उसका मन स्वस्थ नहीं था, लिखते-लिखते उसका ध्यान बट जाता था। केवल चार पंक्तियाँ वह लिखना चाहती थी; पर वह जो कुछ लिखना चाहती थी, उससे लिखा न जाता था। भावावेश में कुछ-का-कुछ लिख जाती थी। छः पत्र वह फाड़ चुकी थी, यह सातवाँ था।

घूमते-घूमते, वह चुपचाप खिड़की में जा खड़ी हुई। सन्ध्या का सूरज दूर पश्चिम में डूब रहा था। माली ने क्यारियों में पानी छोड़ दिया था और दिन-भर के मुरझाये फल जैसे जीवनदान पाकर खिल उठे थे हल्की-हल्की ठंडी हवा चलने लगी। शान्ति ने दूर सूरज की ओर निगाह दौड़ाई—पीली-पीली सुनहरी किरणें, जैसे डूबने से पहले, उन छोटे-छोटे बच्चों के खेल में जी भर हिस्सा ले-लेना चाहती थीं, जो सामने के मैदान की हरी-भरी घास पर उन्मुक्त खेल रहे थे। सड़क पर दो कमीन युवतियाँ हँसतीं, चुहलें करतीं, उछलतीं, कूदतीं चली जा रही थीं। शान्ति ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी और फिर मुड़कर उसने अपने इर्द-गिर्द एक थकी हुई निगाह दौड़ाई—छत पर बड़ा पंखा धीमी आवाज़ से अनवरत चल रहा था। दरवाज़ों पर भारी पर्दे हिल रहे थे और भारी कौच और उन पर रखे हुए रेशमी गद्दे, गलीचे और दरम्यान में रखे हुए छोटे-छोटे अठकोने मेज़ और उन पर पीतल के नन्हें-नन्हें हाथी और फूलदान—और उसने अपने आपको

उस पक्षी सा महसूस किया, जो विशाल, स्वच्छन्द आकाश के नीचे खुली, स्वतन्त्र हवा में आम की डाली से बँधे हुए पिंजरे में लटक रहा हो।

तभी नौकर उसके छोटे लड़के को जैसे बरवस खींचता-सा लाया। धोबी की लड़की के साथ खेल रहा था। आव देखा न ताव और शान्ती ने लड़के को पीट दिया—क्यों तू उन कमीनों के साथ खेलता है, क्यों खेलता है तू! इतने बड़े बाप का बेटा होकर! और उसकी आवाज चीख की हद को पहुँच गई। हैरान से खड़े नौकर ने बढ़कर जबर्दस्ती बच्चे को छुड़ा लिया। शान्ति जाकर धम से कौंच में धँस गई और उसकी आँखों से अनायास ही आँसू बह निकले।

× + × ×

तब वहीं बैठे-बैठे उसकी आँखों के सामने अतीत के कई चित्र फिर गये!

× × × ×

उसके पति जब लाण्डरी का काम करते थे। बाइबल सोसाइटी के सामने, जहाँ आज एक दन्दानसाज बड़े धड़ल्ले से लोगों के दाँत उखाड़ने में निमग्न रहते हैं, उनकी लाण्डरी थी। आय अच्छी थी; पर खर्च भी कम न था। ३५ रुपया तो दुकान का किराया ही देना पड़ता था और फिर कपड़े धोने और इस्त्री करने के लिये जो तबेला ले रखा था, उसका किराया अलग था। इसके अतिरिक्त धोबियों को वेतन, कोयले, मसाला और सौ दूसरे पचड़े! इस सब खर्च की व्यवस्था के बाद जो थोड़ा बहुत बचता था, उससे बड़ी कठिनाई के साथ घर का खर्च चलता था और घर उन्होंने दुकान के पीछे ही महीलाल स्ट्रीट में ले रखा था।

महीलाल स्ट्रीट जैसी अब है, वैसी ही तब भी थी। मकानों का रूप यद्यपि इन दस वर्षों में कुछ बदल गया है; किन्तु मकानों में कुछ अधिक अन्तर नहीं आया। अब भी इस में कमीन बसते हैं और तब भी वही बसते थे। सील-भरी अँधेरी कोठरियाँ चमारों, धीमरों और शुद्ध हिन्दुओं का निवास-स्थान थीं। एक ही कोठरी में रसोई, बैठक, शयन-गृह—और वह भी ऐसा, जिसमें सास-ससुर, बेटा-बहू, लड़कियाँ-लड़के सब एक साथ सोते हों।

जिस मकान में शान्ति रहती थी, उसके नीचे टेंडी चमार अपने आठ लड़के-लड़कियों के साथ रहता था। दूसरी चौड़ी गली में मारवाड़ी की दुकान थी और जिधर दरवाजा था, उधर भंगी रहते थे। उनके दरवाजे से जरा ही परे भंगियों ने तंदूर लगा रखा था, जिसका धुआँ सुबह-शाम उनकी रसोई में आ जाया करता था, जिससे शान्ति को प्रायः रसोई की खिड़की बन्द रखनी पड़ती थी। दिन-रात वहाँ चारपाइयाँ बिछी रहती थीं और कपड़ा बचाकर निकलना प्रायः असम्भव होता था।

गर्मियों के दिन थे और म्युनिसिपैलिटी का नल काफी दूर अनारकली के पास था; इसलिये इन गरीब लोगों की सहूलियत के खयाल से शान्ति ने अपने पति की शिफारिश पर नीचे डेवढ़ी के नल से उन्हें पानी लेने की इजाजत दे दी थी; किन्तु जब उस मकान में आये कुछ दिन बीते, तो शान्ति को मालूम हो गया कि यह उदारता बड़ी मँहगी पड़ेगी। एक दिन जब उसके पति नहाने के बाद साबुन की डिबिया नीचे ही भूल आये और शान्ति उसे उठाने गई, तो उसने उसको नदारद पाया। फिर कुछ दिन बाद तौलिया गायब हो गया, और इसी तरह दूसरे तीसरे कोई न कोई चीज गुम होने

लगी। हारकर एक दिन शान्ति ने अपने पति के पीछे पड़कर नल की टोंटी पर लकड़ी का छोटा-सा बक्स लगवा दिया और चाबी उसकी अपने पास रख ली।

दूसरे दिन, जब एक ही धोती से शरीर ढाँपे वह पसीने से निचुड़ती हुई, चूल्हे के आगे बैठी रोटी की व्यवस्था कर रही थी, तब उसने अपने सामने एक काली-सी लड़की को खड़ी पाया।

लड़की इसकी समवयस्क ही थी। रङ्ग उसका बेहद काला था और शरीर पर उसने अत्यन्त मैली-कुचैली धोती और बंडी पहन रखी थी। वह अपने गहरे काले बालों में सरसों का ही तेल डालती होगी; क्योंकि उसके मस्तक पर बालों के नीचे पसीने के कारण तेल में मिली हुई मैल की एक रेखा बन रही थी। चौड़ा-सा मुँह और चपटी-सी नाक! शान्ति के हृदय में क्रोध और घृणा का तूफान उमड़ आया। आज तक घर में जमादारिन के अतिरिक्त नीचे रहने वाली किसी कमीन लड़की को ऊपर आने का साहस न हुआ था और न स्वयं ही उसने किसी से बातचीत करने की कोशिश की थी।

लड़की मुसकरा रही थी, और उसकी आँखों में विचित्र-सी चमक थी।

"क्या बात है?"—जैसे आँखों-ही-आँखों में शान्ति ने क्रोध से पूछा।

तनिक मुसकराते हुए लड़की ने प्रार्थना की—"बीबीजी पानी लेना है।"

"हमारा नल भंगी चमारों के लिए नहीं!"

"हम भंगी हैं न चमार।"

"फिर कौन हो?"

"मैं बीबीजी, सामने के मन्दिर के पुजारी की लड़की....."

लेकिन शान्ति ने आगे न सुना था। उसे लड़की से बातें करते-करते घिन आती थी। धोती के छोर से चाबी खोलकर उसने फेंक दी।

× × × ×

इस काले-कलूटे शरीर में दिल काला न था। और शीघ्र ही शान्ति को इस बात का पता चल गया। रोज ही पानी लेने के वक्त चाबी के लिए गोमती आती। गली में पूर्बियों का जो मन्दिर था, वह उसके पुजारी की लड़की थी। अमीरों के मन्दिरों के पुजारी भी मोटरों में घूमते हैं। यह मन्दिर था गरीब पूर्बियों का, जिनमें प्रायः सब चौकीदार, चपरासी, साईस अथवा मजदूर थे। पुजारी का कुटुम्ब भी खुली गली के एक ओर भंगियों की चारपाइयों के सामने सोता था। और जब रात को कोई ताँगा उधर गुजरता, तो प्रायः किसी-न-किसी की चारपाई उसके साथ घिसटती हुई चली जाती। मन्दिर में कुआँ तो था; पर जब से इधर नल आया, उस पर डोल और रस्सी कभी ही रही और फिर जब समीप ही किसी की डेवढ़ी के नल से पानी मिल जाय, तो कुएँ पर बाजू तोड़ने की क्या जरूरत है; इसलिए गोमती पानी लेने और कुछ पानी लेने के बहाने बातें करने रोज ही सुबह-शाम आ जाती। बटलोही नल के नीचे रखकर, जिसमें सदैव पान के कुछ पत्ते तैरा करते वह ऊपर चली आती और फिर बातों-बातों में भूल जाती कि वह पानी लेने आई है और उस समय तक न उठती, जब तक उसकी बुढ़िया दादी गली में अपनी चारपाई पर बैठी हुई चीख-चीखकर गालियाँ देती हुई उसे न पुकारती।

इसका यह मतलब नहीं कि इस बीच में शान्ति और

गोमती में मित्रता हो गई थी। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि शान्ति जब रसोई में खाना बनाती अथवा अन्दर कमरे में बैठी कपड़े सीती, तो उसको गोमती का सीढ़ियों में बैठकर बातें करते रहना बुरा नहीं लगता था। कई तरह की बातें होतीं—मुहल्ले के भंगियों की बातें, चमारों के घरेलू झगड़ों की बातें और फिर गोमती की निजी बातें। इस बीच में शान्ति को मालूम हो गया कि गोमती का विवाह हुए वर्षों बीत चुके हैं; पर उसने अपने पति की सूरत नहीं देखी। बेकार है, इसलिए न वह उसे लेने आता है और न उसके पिता उसे उसके साथ भेजते हैं।

कई बार छेड़ने की गर्ज से, या कई बार मात्र आनन्द लेने की गर्ज से ही शान्ति उससे उसके पति के सम्बन्ध में और उसके अपने मनोभावों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछती; उत्तर देते समय गोमती शर्मा जाती थी।

किन्तु इतना सब होते हुए भी उसकी जगह वहीं सीढ़ियों में ही बनी रही।

× × × ×

फिर किस प्रकार पुजारी की वह काली-कलूटी लड़की वहाँ से उठकर; उसके इतने समीप आ गई कि शान्ति ने एक बार अनायास उसे आलिंगन में लेकर कह दिया—आज से तुम मेरी बहन हुईं गोमती! वह सब आज भी शान्ति को स्मरण था।

× × × ×

सर्दियों की रात थी और अनारकली में सब ओर धुआँ धुआँ हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे लाहौर के समस्त तन्दूरों, होटलों, घरों और कारखानों से सारे दिन उठनेवाले धुएँ

ने साँझ होते ही इकट्ठे होकर अनारकली पर आक्रमण कर दिया हो। शान्ति अपने नन्हें को कन्धे से लगाये, हाथों में कुछ हल्के-फुल्के लिफ़ाफे थामे, क्रय-विक्रय करके चली आ रही थी। वह कई दिन के अनुरोध के बाद अपने पति को इधर ला सकी और उन्होंने जी-भर खाया-पिया और सामान खरीद किया था। अनारकली के मध्य बंगाली रसगुल्लों की जो दूकान है, वहाँ से रसगुल्ले खाने को शान्ति का बड़ा मन होता था; पर उसके पति को कभी इतनी फ़ुर्सत ही न हुई थी कि वहाँ तक सिर्फ रसगुल्ले खाने के लिए जा सकें। अस्पताल रोड के सिरे पर हलवाई के साथ चाट वाले की जो दूकान है, वहाँ से चाट खाने को शान्ति की बड़ी इच्छा थी; पर चाट ऐसी निकम्मी चीज खाने के लिए काम छोड़कर जाने का अवकाश शान्ति के पति के पास कहाँ ? कई दिनों से वह अपने उम्मी के लिए कुछ गर्म कपड़ों के टुकड़े खरीदना चाहती थी। सर्दी बढ़ रही थी और उसके पास एक भी कोट न था। और फिर गर्म कपड़ा न सही, वह चाहती थी कि कुछ ऊन ही मोल ले ली जाय, ताकि नन्हें का स्वेटर बुन दिया जाय। पर उसके पति "हूँ", "हाँ" करके टाल जाते थे; किन्तु उस दिन वह निरन्तर महीने भर तक अनुरोध करने के बाद उन्हें अपने साथ अनारकली ले जाने में सफल हुई थी। और उस दिन उन्होंने जी-भर बंगाली के रसगुल्ले और चाटवाले की चटपटी चाट खाई थी; बल्कि घलुए में मोहन के पकौड़े और मटरों वाले आलुओं के स्वाद भी चखे थे। फिर उम्मी के लिए कपड़ा भी खरीदा था और ऊन भी मोल ली थी और दो आने दर्जन वाली गुड-बोग ब्लेडों की डिबिया तथा एक कालगेट साबुन की दो आने वाली टिकिया उसके पति ने भी खरीदी थी। कई

दिनों से वे उन्हीं पुराने ब्लेडों को शीशे के ग्लास में तेज करके नहानेवाले साबुन ही से हजामत बनाते आ रहे थे और उस दिन शान्ति ने यह सब खरीदने के लिए उन्हें विवश कर दिया था। और दोनों जने यह सब खरीदकर खर्च करने के आनन्द की अनुभूति से पुलकित चले आ रहे थे।

दिसम्बर का महीना था और सूखा जाड़ा पड़ रहा था। शान्ति ने अपने सस्ते, पर गर्म शाल को नन्हें के गिर्द और अच्छी तरह लपेटते हुए अचानक कहा—निगोड़ा सूखा जाड़ा पड़ रहा है। सुनती हूँ, नगर में बीमारी फैल रही है।

पर उसके पति चुपचाप धुएँ के कारण कड़वी हो जाने वाली अपनी आँखों को रूमाल से मलते चले आ रहे थे।

शान्ति ने फिर कहा—हमारी अपनी गली में कई लोग बीमार हो गये हैं। परसों टेंडी चमार का लड़का निमोनियाँ से मर गया।

तभी शाल में लिपटा-लिपटा बच्चा हल्के-हल्के दो बार खाँसा और शान्ति ने उसे और भी अच्छी तरह शाल में लपेट लिया।

उसकी बात को सुनी-अनसुनी करके उसके पति ने कहा—आज बेहद बदपरहेजी की है, पेट में सख्त गड़बड़ी हो रही है।

× × × ×

घर आकर शान्ति ने जब लड़के को चारपाई पर लिटाया और मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसके बालों को पिछली तरफ किया, तो वह चौंककर पीछे हटी। उसने डरी हुई निगाहों

से अपने पति की ओर देखा। वे सिर को हाथों में दबाये नाली पर बैठे थे।

"उम्मी का माथा तो तवे की तरह तप रहा है"—उसने बड़ी कठिनाई से गले को अचानक अवरुद्ध कर देने वाली किसी चीज़ का बरबस रोक कर कहा।

लेकिन उसके पति को क़ै हुई।

शान्ति का कण्ठ अवरुद्ध-सा होने लगा था और उसकी आँखें भर-सी आई थीं; पर अपने पति को क़ै करते देख बच्चे का ख्याल छोड़ वह उनकी ओर भागी। पानी लाकर उनको कुल्ला कराया। निढाल-से होकर वे चारपाई पर पड़ गये; पर कुछ ही क्षण बाद उन्हें फिर मतली हुई।

शान्ति के हाथ-पाँव फूल गये। घर में वह अकेली। सास, माँ पास नहीं, कोई दूसरा नाता-रिश्ता भी समीप नहीं और नौकर—नौकर रखने की गुञ्जाइश ही कभी नहीं निकली। वह कुछ क्षण के लिए घबरा गई। एक उड़ी-उड़ी सी दृष्टि उसने अपने ज्वर से तपते हुए बच्चे और बदहज़मी से निढाल पति पर डाली। अचानक उसे गोमती का ख्याल आया। शान्ति अकेली कभी गली में नहीं उतरी थी; पर सब संकोच छोड़ वह भागी-भागी नीचे गई। अपनी कोठरी के बाहर, गली की ओर, मात्र ईंटों के छोटे-से पर्दे की ओट से बने हुए, रसोई घर में बैठी गोमती रोटी बेल रही थी और चूल्हे की आग से उसका काला मुख चमक-सा रहा था। शान्ति ने देखा—उसका बड़ा भाई अभी खाना खाकर उठा है। तब आगे बढ़कर उसने इशारे से गोमती को बुलाया। तवे को नीचे उतार और लकड़ी को बाहर खींचकर गोमती उसी

तरह भागी आई। तब विनीत भाव से संक्षेप में शान्ति ने अपने पति तथा बच्चे की हालत का उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि वह अपने भाई से कहकर तत्काल किसी डॉक्टर को बुला दे। उनकी लांडरी के साथ ही जिस डॉक्टर की दुकान है, वह सुना है, पास ही लाज रोड पर रहता है। यदि वह आ जाय, तो बहुत ही अच्छा हो। और फिर साड़ी के छोर से पाँच रुपये का एक नोट खोल शान्ति ने गोमती के हाथ में रख दिया कि फ़ीस चाहे पहले ही क्यों न देनी पड़े; पर डॉक्टर को ले अवश्य आयें। और फिर चलते-चलते उसने यह भी प्रार्थना की कि रोटी पकाकर सम्भव हो तो तुम ही ज़रा आ जाना, उम्मी''''।

शान्ति का गला भर आया था। गोमती ने कहा था—आप घबरायें नहीं, मैं अभी भाई को भेज देती हूँ और मैं भी अभी आई और यह कहकर वह भागती-सी चली गई थी।

शान्ति वापस मुड़ी, तो सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उसने महसूस किया कि शंका और भय से उसके पाँव काँप रहे हैं और उसका दिल धक-धक कर रहा है।

ऊपर जाकर उसने देखा—उसके पति ऊपर से उतर रहे हैं। हाथ में उनके खाली लोटा है, चेहरा पहले से भी पीला हो गया है, और माथे से पसीना छूट रहा है।

शान्ति के उड़े हुए चेहरे को देखकर उन्होंने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—घबराओ नहीं, सर्दियों में हैज़ा नहीं होता।

शान्ति ने रोते हुए कहा—आप ऊपर क्यों गये, वहीं नाली पर बैठ जाते; किन्तु जब पति ने नाली की ओर, और

फिर चारपाई पर पड़े हुए बीमार बच्चे की ओर इशारा किया, तो शान्ति चुप हो गई। उसने पहले सहारा देकर पति को बिस्तर पर लिटाया फिर नाली पर पानी डाला, फिर दूसरे कमरे में बिस्तर बिछा, बच्चे को उस पर लिटा आई। तभी गोमती आ गई। खाना तो सब खा चुके थे, अपने हिस्से का आटा उठा, आग बुझा, वह भाग आई थी।

शान्ति ने कहा—मैं उम्मी को उधर कमरे में लिटा आई हूँ। मुझे डर है उसे सर्दी लग गई है, साँस उसे और भी कठिनाई से आने लगी है और खाँसी भी बढ़ गई है। निचली कोठरी में पड़े हुए पुराने लिहाफ़ से कपड़े ले लो और अँगीठी में कोयले डाल उसकी छाती पर ज़रा सेंक दो। इनके पेट में गड़बड़ है। मैं इधर इनका उपचार करती हूँ। कुछ नहीं तो गर्म पानी करके बोतल ही फेरती हूँ।

गोमती ने कहा—इन्हें बीबीजी कोई हाज़मे की चीज़ दो! हमारे घर तुम्बे की अजवाइन है। मैं उसमें से कुछ लेती आई हूँ, जब तक डॉक्टर आये, उसे ही ज़रा गर्म पानी से इन्हें दे दो।

बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के शान्ति ने मैली-सी पुड़िया में बँधी काली-सी अजवाइन ले ली थी और गोमती अँगीठी में कोयले डाल नीचे कपड़े लेने भाग गई थी।

× × × ×

बाहर शाम बढ़ चली थी। वहीं कमरे के अँधेरे में बैठे-बैठे शान्ति की आँखों के आगे चिन्ता और फ़िक्र के वे सब दिन-रात फिर गये। उसके पति को हैज़ा तो न था; किन्तु गैस्ट्रो ऐन्टिराइटिस (Gostro enteritis) तीव्र क़िस्म का

था। डॉक्टर के आने तक शान्ति ने गोमती के कहने पर उन्हें तुम्बे की अजवाइन दी थी, प्याज भी सुँघाया था और गोमती अँगीठी उठाकर दूसरे कमरे में बच्चे की छाती पर सेंक देने चली गई थी। डॉक्टर के आने पर मालूम हो गया था कि उसे निमोनिया हो गया है और अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

शान्ति अपने पति और अपने बच्चे दोनों की एक साथ कैसे तीमारदारी करती, उसने अपनी विवशता से गोमती की ओर देखा था; पर उसे होंठ हिलाने की जरूरत न पड़ी थी, बच्चे की सेवा-सुश्रूषा का समस्त भार गोमती ने अपने कन्धों पर ले लिया था। शान्ति को मालूम भी न हुआ था कि वह कब घर जाती है, कब घरवालों को खाना खिलाती है या खाती है, या खिलाती खाती भी है या नहीं। उसने तो जब देखा, उसे छाया की भाँति बच्चे के पास पाया। कई दिन तक एक ही जून खाकर गोमती ने बच्चे की तीमारदारी की थी।

× × × ×

दोपहर का समय था, उसके पति दूकान पर गये हुए थे। उम्मी को भी अब आराम था और वह उसकी गोद से लगा सोया पड़ा था और उसके पास ही फर्श पर टाट बिछाये, गोमती पुराने ऊन के धागों से स्वेटर बुनना सीख रही थी। इतने दिनों की थकी-हारी उनींदी शान्ति की पलकें धीरे-धीरे बन्द हो रही थीं, वह उन्हें खोलती थी; पर वे फिर बन्द हो जाती थीं। आखिर वह वैसे ही पड़ी-पड़ी सो गई थी। जब वह फिर उठी तो उसने देखा—उम्मी रो रहा है, और गोमती उसे बड़े प्यार से सुरीली आवाज़ में थपक-थपक कर लोरी दे

रही है। शान्ति ने फिर आँखें बन्द कर लीं। उसने सुना गोमती धीमे-धीमे स्वर से गा रही थी—

आ री कक्को, जा री कक्को, जङ्गल पक्को बेर
भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा!

और फिर—

आ री चिड़ैया! दो पप्पड़ा पकाए जा!
भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा!

बच्चा चुप कर गया था। लोरी खत्म करके उसने बच्चे को गले से लगाकर चूम लिया। शान्ति ने अर्ध-निमीलित आँखों से देखा, बच्चे के पीले जर्द सूखे से मुख पर गोमती का काला स्वस्थ मुख झुका हुआ है। सुख के आँसू उसकी आँखों में उमड़ आये। उसने उठकर गोमती से बच्चे को ले लिया था और जब वह फिर टाट पर बैठने लगी थी, तो दूसरे हाथ से शान्ति ने उसका हाथ पकड़ चारपाई पर बिठाते हुए, उसे अपने बाजू से बाँध लिया था और कहा था—आज से तुम मेरी बहन हुईं गोमती!

× × × ×

आँखें बन्द किये शान्ति इन्हीं स्मृतियों में गुम थी, उसकी आँखों से चुपचाप आँसू बह रहे थे कि अचानक उसके पति अन्दर दाखिल हुए। किसी जमाने में लाँडरी चलानेवाले और समय पड़ने पर, स्वयं अपने हाथ से इस्त्री गर्म करके कपड़ों को प्रेस करने में भी हिचकिचाहट न महसूस करने वाले ला० दीनदयाल और लाहौर की प्रसिद्ध फर्म 'दीनदयाल एण्ड सन्स' के मालिक प्रख्यात शेयर ब्रोकर लाला दीनदयाल में महान् अन्तर था। इस दश वर्ष के अर्से में उनके बाल

यद्यपि पक गये थे; किन्तु शरीर कहीं अधिक स्थूल हो गया था ढीले-ढाले और प्रायः लाँडरी के मालिक होते हुए भी मैले कपड़े पहनने की जगह अब उन्होंने अत्यन्त बढ़िया किस्म का रेशमी सूट पहन रखा था और पावों में श्वेत रेशमी जुर्राबें तथा काले हल्के सेंडल पहने हुए थे।

शान्ति ने झट रूमाल से आँखें पोंछ लीं।

बिजली का बटन दबाते हुए उन्होंने कहा—यहाँ अँधेरे में क्यों पड़ी हो, उठो बाहर बाग में घूमो-फिरो और फिर बोले—इन्द्रानी का फोन आया था कि बहन यदि चाहें तो आज सिनेमा देख जायँ।

"बहन"—दिल ही दिल में विषाद से शान्ति मुसकराई और उसके सामने एक और काली-कलूटी-सी लड़की का चित्र खिंच गया, जिसने उसे कभी बहन कहा था; किन्तु प्रकट में उसने सिर्फ इतना कहा—मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं!

मुह फुलाए हुए ला० दीनदयाल बाहर चले गये।

तब आँखों का फिर एक बार पोंछकर और तनिक स्वस्थ होकर, शान्ति मेज के पास आई और कुर्सी पर बैठ, पैड अपनी ओर को खिसका, कलम उठाकर उसने लिखा।

"बहन गोमती

तुम्हारी बहन अब बड़ी बन गई है। बड़े आदमी की बीबी है। बड़े आदमियों की बीवियाँ अब उसकी बहनें हैं। पिंजरे में बन्द पत्ती को कब इजाजत होती है कि स्वच्छन्द, स्वतन्त्र विहार करनेवाले अपने हमजोलियों से मिले? मैंने तुम्हें कल फिर आने के लिए कहा था; पर अब तुम कल न आना। अपनी इस बन्दिनी बहन को भूलने की कोशिश करना! —शान्ति"

इस बार उसने एक पंक्ति भी नहीं काटी और न कागज़ ही फाड़ा। हाँ, एक बार लिखते-लिखते फिर आँखें भर आने से जो एक-दो आँसुओं की बूँदें पत्र पर अनायास ही गिर पड़ी थीं, उन्हें उसने ब्लाटिंग पेपर से सुखा दिया था। फिर पत्र लिफाफे में बन्द करके उसने नौकर को आवाज़ दी और उसके हाथ में लिफ़ाफा देकर कहा कि महीलाल स्ट्रीट में पूर्वियों के मन्दिर के पुजारी की लाड़ली गोमती को दे आओ। फिर समझाते हुए कहा—गोमती, कुछ ही दिन हुए अपनी ससुराल से आई है।

पत्र लेकर नौकर चला ही था कि शान्ति ने उसे फिर आवाज़ दी और पत्र उसके हाथ से लेकर फाड़ डाला। फिर धीरे से उसने कहा-"तुम गोमती से कहना कि बीबी अचानक आज मैके जा रही हैं और दो महीने तक वापस न लौटेंगी।"

यह कहकर वह फिर खिड़की में जा खड़ी हुई और अस्त हो जानेवाले सूरज के स्थान पर ऊपर की ओर बढ़ते हुए अँधेरे को देखने लगी।

× × × ×

बात इतनी ही थी आज दोपहर को जब वे ब्रिज खेल रहे थे, तब नौकर ने आकर खबर दी थी कि महीलाल स्ट्रीट के पुजारी की लड़की गोमती आई है। तब खेल को बीच ही में छोड़कर, और भूलकर कि उसके पार्टनर रायसाहब लाला बिहारीलाल हैं, वह भाग गई थी उसने गोमती को अपनी भुजाओं में भींच लिया था और फिर वह उसे अपने कमरे में ले गई थी, तब दोनों बहुत देर तक अपने दुःख-सुख की बातें करती रही थीं। शान्ति ने जाना था कि किस प्रकार गोमती

का पति काम करने लगा, उसे ले गया और चार बच्चों की माँ बना दिया और गोमती ने उम्मी का और दूसरे बच्चों का हाल पूछा था। ला० दीनदयाल इस बीच में कई बार बुलाने आये थे; पर वह न गई थी और जब दूसरे दिन आने का वादा लेकर उसने गोमती को विदा किया था, तो उसके पति ने कहा था—'तुम्हें शर्म नहीं आती, उस उजड्ड और गँवार औरत को लेकर तुम बैठ रहीं, तुम्हें मेरी इज्जत का जरा भी खयाल नहीं। उसे बगल में लिये उन सबके सामने गुजर गईं। राय साहब और उनकी पत्नी हँसने लगे और आखिर प्रतीक्षा कर करके चले गये''''

इसके बाद उन्होंने और भी बहुत कुछ कहा था; लेकिन शान्ति ने तो फैसला कर लिया था कि वह पिंजरे को पिंजरा ही समझेगी और उड़ने का प्रयास न करेगी।

(उपेन्द्रनाथ 'अश्क')

तमाशा

"जीजी।"

"क्या है सत्या ?"

"जीजी, जीजी !"

सुशीला उठी, देखा कि सत्या चुपचाप गहरी नींद में बड़-बड़ा रही थी। भादों की अँधियारी रात। बाहर लगातार कई दिनों से पानी बरस रहा था। बड़ी रात गुजर चुकी थी। वह सत्या के पलंग पर बैठ गई। फर्श पर नीचे नौकरानी सो रही थी। उस सोई सत्ता ने न जाने क्या स्वप्न देखा था, कि सुशीला को नींद में पुकारने की जरूरत पड़ गई। यह सत्या एक अरसे से बीमार है, सुशीला को चैन नहीं। वह उस सत्या को देखती रह गई। उसे तो यह डर था कि कहीं किसी दिन सत्या एकाएक कच्चे सूत के तागे की तरह टूट न जावे। मनबुझाव कर लेती थी कि यह होगा नहीं। सत्या घुल रही थी। अब उसके शरीर में कोई भी तत्त्व बाकी नहीं रह गया है। आँखें भीतर घुस चुकी हैं। शरीर निर्बल है। कभी भी चटक जावे, सन्देह इसमें नहीं है।

सुशीला बोली—सत्या !

"हाँ जीजी।"—सत्या ने आँखें खोल ली थीं।

"अब जी कैसा है ?"

"अच्छी हूँ मैं।"

"तू तो बड़बड़ा रही थी।"

"मैं।" सत्या उलझन में बोली।

"क्यों, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं जीजी।"

"तब जरूर कुछ बात है।"—सुशीला हल्के मुसकराई। अब व्यवस्थित रोगी व रोगी के वातावरण के भीतर भी कभी-कभी हँसी-मजाक चलता है। इसे अपने से अलग कोई भी नहीं रखना चाहता है।

'हाँ, है है! बतलाऊँगी थोड़े ही।"—सत्या गम्भीर हो गई।

"जाने दे, पूछना कौन है।"—सरलता से सुशीला बोली।

"गुस्सा हो गई जीजी?"

"नहीं सत्या।" कहकर, सुशीला ने सत्या को चूम लिया। सत्या खिल उठी।

और सत्या बोली—"मैंने एक सपना देखा था।"

"सपना!"

"सुनेगी न।"

"हाँ।"

सत्या तब बोली—जीजी, मैं गोल कमरे में बैठी पढ़ रही थी, तभी एक लड़का आकर बोला,—चलेगी सत्या?

उस लड़के को आज तक मैंने कभी भी नहीं देखा था। बड़ा सुन्दर था वह। और उसकी आँखों के प्रभाव में मैं आ गई। ना नहीं किया। उसके साथ हो ली। हम दोनों बड़ी दूर तक साथ-साथ गये। उसने एक कमरे का दरवाजा खोला। बहुत ही सजा हुआ कमरा था। वह बोला—बैठ जाओ।

मैं बैठ गई थी।

"तुम जानती हो, मैं क्या करता हूँ?"—वह बोला।

"नहीं।"—मैं बोली।

"मिट्टी के खिलौने बनाता हूँ। तुम्हारा भी एक ढाँचा बनाऊँगा। बैठी रहो।"

वह दूसरे कमरे में चला गया। कुछ देर बाद मैंने देखा कि मेज पर बैठकर वह मुझे देख रहा है। बड़ी देर के बाद उसने मुझे एक खिलौना दिखलाया। मैं आश्चर्य में पड़ गई। वह हू-ब-हू मुझ-जैसा था। वह फिर बोला,—अब तुम जाओ—दरवाजे तक मुझे पहुँचाया और सड़क पर करके, दरवाजा बन्द कर दिया। अकेले मैं घबड़ा गई। तभी तुझे पुकारा था।

"खिलौना तू ने नहीं माँगा!"—सुशीला ने पूछा।

"माँगना चाहती थी। माँग नहीं सकी।"

"ऐसी क्या बात थी?"

"उसके आगे मेरी कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं पड़ी।"

"क्यों?"

"मुझे लगा कि मैं उससे प्रेम करने लग गई हूँ। मैं जाहिर नहीं करना चाहती थी, इसलिए नहीं माँगा। वही तो मेरी यादगार उसके पास बची है।"

........किन्तु वह सत्या तो आज सुशीला के नजदीक नहीं है। कई साल पुरानी, वह बात अब हो गई। इसके बाद, दुनिया भी बदलती चली गई। अब सुशीला भी जान गई है कि दुनिया के भीतर कुछ नहीं। उसके हृदय में आजकल एक नया सुख भर रहा है। वह जानती है कि अब वह माँ बनेगी। बस खुद ही अपने दुलार में फूली नहीं समाती है। सोचती है, कि 'बेबी' छोटा होगा—छोटे-छोटे कान, छोटी-छोटी आँखें। अपने ही में गणना करती, हँसती रहती है। वह खुश है, लापरवाह है, कहीं कोई भी चिन्ता उसे नहीं

घेरती। पति है, गृहस्थी—सारा जीवन सुचारु रूप से चल रहा है कहीं जरा भी कठिनता नहीं है। सरलता से सब मिल जाता है। इतना सब पाकर चिन्ता कभी नहीं घेरती है। कहीं दुःख नहीं, पीड़ा नहीं, पिछले सारे जीवन को पति ने आज ऐसे ढक लिया है, कि कहीं भी कुछ सोचने का मौका उसे नहीं मिलता।

फिर भी जीवन में सुख ही सब कुछ नहीं है। पिछली घटनाएँ कभी-कभी अवसर पाकर खुद ही फूट निकलती हैं। वैसे ही घनी बरसात है। पति दौरे पर चले गये हैं। अकेले उसका दिल नहीं लगता, कहाँ तक वह अकेली रहे। सारे कमरे को कभी-कभी कुहरा घेर लेता है। भारी घबराहट दिल में होती है। आस-पास दूर-दूर तक कुछ भी नजर नहीं पड़ता। अपने भीतर ही एक सीलन-सी भरती जा रही है। वह उठती है। बेकार खिड़की से बाहर देखती है। कुछ नहीं! दूर-दूर तक यही घना फैला-फैला कुहरा और वही पानी—पानी—पानी! मन मार कर बिस्तर पर बैठ जाती है। किताब उठाकर पढ़ना चाहती है कि दिल बहला रहे। यह तरीका भी काम नहीं देता है। वह नहीं जानती है कि परेशान क्यों हो रही है। पति आज न सही, तीन-चार दिन में लौट ही आयेंगे। फिर उसे अकेलापन महसूस नहीं होगा; लेकिन फौरेन्टर के इस बँगले के आस-पास कोई भी बँगला नहीं है। जङ्गल के बीच, नजदीक और क्लर्कों के कार्टर हैं। यहाँ भी उसके मन के लायक कोई नहीं। कुछ बहुत बूढ़ी हैं और अदब से शिक्षा दे जाया करती हैं। एक सुरेन्द्र की बहू है, वह बेचारी ठीक से बात नहीं करती। अभी-अभी उसकी शादी हुई है, भारी लाज में उसका हर वक्त घूँघट ही लट-

कता रहता है। कुछ भी पूछो, जवाब नहीं देगी। उसे यदि बुलाया जाय, बेकार ही होगा। वह इतनी सुबह आ भी तो नहीं सकती है। सुशीला ने सुरेन्द्र को कई बार देखा है। उसकी और बहू, दोनों की तुलना की है। उनके छोटे परिवार को वह हर तरह से मदद देती है। इसकी एवज में सुरेन्द्र की बूढ़ी माँ अपनी मेम साहिबा का गुणगान व चर्चा इधर-उधर सुनाती फिरती हैं। यह धन्धा वह बखूबी निभाती हैं।

अबके पहले-पहल सुशीला पति के साथ आई है। यह तीन महीनों के बाद पहला ही मौका है पति दौरे पर चले गये हैं और वह अकेली है। तभी न जाने क्यों उसके मन में बेचैनी और बेकली फैल रही है। यह तो एक छोटा-सा अवसर है। लगातार सारी जिन्दगी अभी तो उसे इसी तरह रहना है। नहीं फिर 'बेबी' के साथ वह खेला करेगी। उसे इतना बुरा नहीं लगेगा आदत भी पड़ जावेगी। यह इतना तर्क वह स्वीकार कर लेती है। लेकिन खाली-खाली क्या करे? बरसात के मारे तो नाक में दम है। कुछ करने को तबियत नहीं चाहती। मन में उचाट है। और इसी तरह पानी बहेगा—कब तक! पहाड़ की बरसात का आज तक उसे इतना अनुभव नहीं था फिर यह सफेद-सफेद कुहरा, अजीब-सी दौड़ लगाता है। कभी-कभी तो इतना घना हो जाता है, कि आँखें उसे बिलकुल नहीं छेद पाती हैं। उसने खिड़की बन्द करदी। कमरों के भीतर कपड़ों व और चीजों पर भी वह जम जाता है। सारे कपड़े भीगे लगते हैं। न जाने कब तक आसमान साफ होगा। अब वे आवेंगे, तो वह कहेगी कि, मुझे डर लगता है। दौरे में भी साथ-साथ चला करूँगी! या मुझे मायके भेज दो। वे समझेंगे कि मायके

जाने का बहाना है। इतना स्वार्थ भी वह अपने ऊपर साबित नहीं होने देगी। जी कड़ा करके यहीं रहेगी। यहीं, यहीं, यहीं ! लोग तो न जाने कहाँ-कहाँ रहते हैं। इस दुनियाँ में इससे भी खराब जगह हैं।

और ऐसी ही तो थी, वह बरसात।

लगातार चलती सत्या की बीमारी। सत्या बीमार हुई थी और सुशीला अपनी उस सहेली के साथ 'हिल स्टेशन' आई। न सत्या के बिना सुशीला को चैन था, न सुशीला के बिना सत्या। जब सत्या बीमार पड़ी, माता-पिता के लाख मना करने पर भी सुशीला नहीं मानी। कॉलेज पढ़ने नहीं गई थी। और, सत्या के पास चली आई। अपनी उस प्यारी सत्या के आगे कॉलेज की पढ़ाई व्यर्थ लगती थी। फिर सत्या सुशीला से दो साल छोटी है। सुशीला को सत्या पुकारती है—जीजी, जीजी। सुशीला तो सिर्फ कहती है—सत्या।

सत्या की बीमारी बढ़ती जा रही थी। किसी की भी समझ में कुछ नहीं आया; लेकिन सुशीला को विश्वास है कि सत्या अच्छी हो जावेगी। फिर वही पुराना व्यवहार, और बर्ताव चालू होगा। उसी तरह वे साथ-साथ रहेंगी। सत्या की माँ कहती थी—सत्या का ,सुशीला की शादी में दहेज दे दूँगी। कौन दूल्हा ढूँढ़ने की आफत सिर मोल ले।

सत्या कहती थी चुप रहो माँजी। जीजी और मैं शादी नहीं करेंगी, हम तो डाक्टरनी बनेंगी; एक बड़ा अस्पताल खोला जावेगा। गरीबों का इलाज मुफ्त किया जावेगा। विलायत से पढ़कर लौटेंगी। जीजी बनेंगी बड़ी डॉक्टरनी और मैं छोटी जीजी का हुक्म मानकर चलूँगी। अभी कल ही जीजी और मैंने हिसाब लगाया था, रुपया नहीं चाहिए।

यह बात तय थी कि सुशीला डॉक्टरी की उच्च शिक्षा लेने बाहर जावेगी। घर के लोग सहमत थे और जब सत्या बीमार पड़ी, डॉक्टरों के कहने पर उसके घरवाले उसे पहाड़ ले जाने वाले थे। रात को सत्या ने सुशीला से पूछा था—तुम साथ नहीं चलोगी जीजी !

"यों नहीं सत्या !"

"देखो, झूठ नहीं बोलो ? माँजी कहती थीं कि तुम तो परसों कॉलेज जा रही हो। सब इन्तजाम ठीक हो चुका है।"

"मैं तेरे साथ चलूँगी।"

"बहका रही हो।"

"नहीं सत्या।"

"और कॉलेज।"—उलझन में सुशीला ने पूछा था।

"तुम कॉलेज चली जाओ मैं अच्छी हो ही जाऊँगी। क्यों बेकार तुम मेरे लिए मुसीबत झेलो।"

"सत्या !"

"क्या है जीजी ?"

"तू बड़ी जल्दी 'नरवस' हो जाती है। दो-चार महीने के बाद कॉलेज चली जाऊँगी। भला सत्या के बिना मेरा मन वहाँ कैसे लगेगा। नहीं, कभी भी नहीं। तुझे भी साथ ले लूँगी। प्राइवेट 'मैट्रिक' तू देना।"

"तब साथ चली चलो जीजी।"

और सुशीला एक दिन कॉलेज न जाकर, जब सत्या के साथ चली गई, तो घरवालों को कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ था। पहले कुछ रुकावट घरवालों ने डालनी चाही थी, फिर कुछ नहीं कहा। घरवाले उससे अधिक नहीं बोला करते थे।

सिर्फ पिताजी ने कहा था—अपने ही मन का होना भी ठीक नहीं होता है।

अब वह गृहस्थी में है। पति है। वह बड़ा अस्पताल कहीं भी नहीं। न सुशीला डॉक्टरनी बनी। वह सारी ख्वाहिश मिट गई थी। सत्या ने भी साथ नहीं दिया! आज तो वह अपने पति के साथ रहती है। वहीं रहना सीखकर मन में मैल जमा करने की आदी नहीं रह गई है। इतना ज्ञान भी अब है, कि जीवन में घटनाएँ हैं, परिस्थितियाँ हैं, मजबूरियाँ हैं, कि कठोर सत्य है और कभी भी मिथ्या नहीं जाती। शादी के बारे में भी उसने अपनी निजी कोई राय नहीं दी थी। जब शादी हो गई, उसने कहीं भी कुछ इनकार नहीं किया। अपना कोई मान, आदर, घमंड जैसे कि बाकी नहीं रह गया था। वह इतनी कमजोर हो गई थी, कि उसे अपनी नारी-कोमलता पर विश्वास नहीं रह गया। जीवन में सहज ज्ञान के भीतर, अपनी किसी तृष्णा में भी बँधी रह जाना, वह नहीं चाहती थी। उसके 'बेबी' होगा। वह माँ बनेगी। जीवन-पर्यन्त, पति और 'बेबी' के साथ वह चलेगी। यही उसकी जगह है। यहाँ से कभी भी, भाग कर छुटकारा पाने वाला तकाजा, मन में लाकर, विद्रोह मोल ले लेना जँचता नहीं है। सब्र जीवन का सबसे मजबूत स्तम्भ है। उसे पकड़े रहना चाहिए।

फिर यह सारा वातावरण। इस अकेले-अकेले में मन नहीं लगता है। वे पहले कह देते कि यह हाल वहाँ रहता है, तो वह नहीं आती। उन्होंने चुपके पूछा था—'चलेगी सुशीला ?'

मना करने वाला ज्ञान न जाने वह कहाँ बिसार चुकी

थी। पति के साथ वह न कभी झगड़ती है, न तकरार बढ़ाती है। जो कुछ वे कहते हैं, उसको मान लेना अपना कर्तव्य मान लिया है। फिर वह तो इतनी असमर्थ और लाचार है कि पति के सहारे ही चल रही है। अपना उसके पास कुछ भी नहीं। वह चूक चुकी थी। निरर्थक पड़ी रही। पति ने आकर न जगाया होता, पड़ी की पड़ी ही रह जाती। यह उसका आज का जीवन पति की देन है; अन्यथा वह तो जिन्दगी से निराश हो चुकी थी।

और........और भी घना कुहरा। टीन पर, टप-टप-टप करता पानी। खिड़की उसने खोल ली थी। बाहर देखा, पानी के नाले बह रहे थे। पास ही बँगले से लगा, जो झरना था, उसकी तेज आवाज कानों में पड़ रही थी—छड़-छड़-छड़ड़ड़ ! वह लौट कर बैठ गई। सोचा, सत्या ने उसे आधी रात को कहा था—'उस लड़के से प्रेम करने लगी हूँ।'

सुशीला कुतूहल में चुप रही।

सत्या फिर बोली थी—उसे देखते ही मैं पहचान लूँगी। मुझे जरा अच्छा तो होने दे। अभी तू चुप क्यों है ?

"क्या ?"

"तब क्या, प्रेम करना ठीक बात नहीं है। उसने कुछ थोड़े ही कहा है। हम सब तो साथ-साथ रहेंगी, जीजी।"

"अच्छा, क्यों, बात क्या है ?"

"बड़ा अस्पताल खोलेंगे। पाँच-छः साल की बात ही तो है। बहुत काम पड़ा है। लेकिन जीजी ?"

"क्यों, क्या है !"

"वह मुझे इस तरह, क्यों बुला कर ले गया था।"

"यह जानकर कि तू अस्पताल की छोटी डॉक्टरनी बनेगी। नुस्खे लिखेगी। सुशीला जीजी के साथ रहेगी। सब कुछ उसे भी तो मालूम हो गया है। तब मैं भला अकेली क्या करूँगी।"

"तो जीजी, तू कभी शादी नहीं करेगी?"

सुशीला ने जवाब नहीं दिया था।

"देख जीजी, तू कभी शादी मत करना। चाहे मैं मर ही जाऊँ। तू तब भी जरूर अस्पताल खोलना।"

"धुत्! क्या-क्या गणना करना सीख गई।"

सुशीला कितना ही विश्वास करना चाहती थी कि सत्या बच जावेगी। उसका आपरेशन ठीक तरह से हो गया है, उसकी आँतें अब ठीक हो रही हैं। डॉक्टरों के सन्देह के आगे, वह फिर भी डर जाती थी। उनका कहना था कि भारी खतरा है। वह उनसे दलील करके, समझना चाहती थी कि सत्या जिन्दा रहेगी, मरने की नहीं है। वे सब उसकी राय पर कुछ भी जवाब नहीं देते थे, जैसे कि व्यर्थ ही वह सब कुछ कहा करती है। कभी-कभी तो उसे गुस्सा चढ़ता कि डॉक्टर ठीक इलाज नहीं कर रहे हैं। वह उनको ठीक तौर पर समझा देना चाहती थी कि—सत्या जिन्दा रहेगी, जरूर रहेगी। वह खूब जानती है कि वे सब बदमाश हैं। नहीं चाहते कि सत्या एक एकदम अच्छी हो जावे! इससे उनकी रोज़ी पर असर पड़ेगा। उनको फीस नहीं मिलेगी। बूढ़े मिलीटरी के कर्नल से एक दिन उसने अपनी शङ्का समझाई तब वह हँसते हुए बोला—मिस सुशीला, खुदा करे तुमको भी एक दिन ऐसा ही जिम्मेदार मरीज मिले।

वह चुप रह गई थी। मेडीकल कालेज के अधूरे एक साल के ज्ञान से भला वह क्या रोग पहचान सकती थी। व्यवस्था भी बनानी नहीं सीखी थी। वह तो एक नर्स की तरह, ठीक परवाह करना भी नहीं जानती थी।

सत्या अपने उस भारी सन्देह के बाद सो गई थी। सुशीला बड़ी देर तक सत्या के पलंग के पास ही कुर्सी पर बैठी रही। अपने पलंग पर पहुँची थी कि सत्या चिल्लाई—'जीजी, जीजी !'

सुशीला कुछ भी समझ नहीं पाई थी। पास पहुँची। देखा कि सत्या सफेद पड़ गई थी। और भय से काँपती बोली—"जीजी न जाने क्यों भारी डर लग रहा है।"

"मैं तो जगी हूँ।"

"फिर वह आया था।"

"कौन ?"

"वही लड़का। उसके हाथ में वही खिलौना था। बोला—चल सत्या मेरे साथ। मुझे देरी हो रही है।"

"जीजी को मैं नहीं छोड़ूँगी।—मैंने कहा था। और वह खिल-खिलाकर हँस पड़ा।"

सुशीला बात नहीं समझ सकी थी। दिमागी यह तमाशा या खेल और केवल स्वप्न ही तो था! क्या सत्या मर रही है। उसने सत्या की 'पल्स' देखी............सुस्त। वह घबड़ा गई। उठकर बाहर आई। दूसरे कमरे में धरा फोन उठाया; नम्बर मिलाकर चिल्लाई थी—डाक्टर, सत्या का दिल डूब रहा है।

लौटकर सत्या के पास बैठ गई थी। सत्या अब बोली थी—'जीजी, मैं उसके साथ जाऊँगी।'

"और अस्पताल, वह सारी स्कीम !"

"मुझे माफ़ करना जीजी।"

"क्या सत्या ?"

"मैं उससे प्रेम करती हूँ !'

"प्रेम।"

"तू अस्पताल चलाना। किसी से प्रेम मत करना। वह मुझे बुला रहा है।"

और सत्या ने फिर कुछ भी नहीं कहा था भारी बुखार चढ़ा और बेहोश हो गई थी। बुखार एकदम उतरा और वह खत्म हो गई। सुशीला 'हिल स्टेशन' से लौटकर फिर 'मेडिकल कॉलेज' नहीं गई। उसके जीवन में कुछ भी उत्साह बाकी नहीं रह गया था। सत्या उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फेर कर चली गई थी। उसका मन उचाट हो आया। कहीं भी तबीयत नहीं लगती है। एक दिन उसके आगे शादी का सवाल उठा वह साफ इनकार कर चुकी थी; लेकिन सत्या की माँ की भारी कस्मों के आगे वह कुछ नहीं बोली। शादी हुई। सारा झगड़ा मिटाकर वह पति के साथ आई। कुछ भी हल्ला नहीं किया, उसके अवस्था, मन और शरीर ने नया जीवन पाया ! वह स्वस्थ होने लग गई।

फिर वही बरसात। पिछली स्मृति के साथ, आज फिर मन में अड़चन आई, परेशानी फैली वह बहुत उलझ गई। सत्या मर गई थी ! दुनिया कुछ नहीं। अपना-पराया—एक ढोंग।

तभी उस कुहरे के बीच उसने एक भारी चीख सुनी। किसी ने पुकारा—जीजी !

सुशीला उठ बैठी। बाहर पानी बरस रहा था। सत्या का वह स्वर, कुहरा छेदकर भी उसके कानों में पहुँचा। खिड़की से बाहर देखा—कुछ नहीं, कुछ नहीं ! फिर एक आहट हुई जैसे कि कमरे में कोई चल फिर रहा हो। दूसरे कमरे से आवाज़ आई—जीजी, ओ जीजी !

वही सत्या का स्वर। वह चौंकी। उस कमरे में पहुची। धुँधला अँधियारा था। कुछ और नहीं दीखा। उसके पति के कागजात मेज पर पड़े, फैले हुए थे। लगा कि कोई उन कागजों को चीर-फाड़ रहा है। स्तब्ध सुशीला खड़ी थी, खड़ी रह गई सत्या कहाँ से आई है। स्वर वही—वही था। वह पहचानती थी।

तब फिर वही स्वर—जीजी।

लगा, पेट के भीतर जो 'बेबी' है, वह चलने-फिरने लग गया है, वही बोल रहा है। भ्रम कुछ नहीं। वही सत्या है। सत्या 'बेबी' बनकर फिर एक बार आई है।

कि उसने सीढ़ियों पर हँसने की खिलखिलाहट सुनी। सत्या तो हँस रही थी। कहाँ रही सत्या—निर्मोही कहीं की। अब पकड़ कर भागने नहीं देगी।

जल्दी से वह बाहर निकली। सीढ़ियों के पास पहुँची। घना अँधियारा था, लगा कि कोई नीचे भाग रहा है। सत्या की आहट थी। वह उद्भ्रान्त हो उठी। जल्दी-जल्दी सत्या को पकड़ने उतरी ; किन्तु पाँव फिसल गया ! वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ी।

आवाज सुनकर नौकर बाहर आया। देखा कि सुशीला

खून से लथपथ भीग गई थी। खून बहता-बहता जा रहा था।

आध घण्टे बाद, बड़े डाक्टर ने आकर कहा था—बच्चा मर गया है। ऑपरेशन होगा! जिन्दा रहने की कोई खास उम्मेद नहीं।

(पहाड़ी)